# विवेक शिखा

नवम्बर–१९८८ अंक–११

## [स्वा]मी माधवानन्द शतवार्षिकी अंक

# विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना
४६. श्री नरेश कुमार कश्यप—नागपुर (महाराष्ट्र)
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति—अमरावती ,,
४८. डॉ० दर्शन लाल—कुराली (पंजाब)
४९. श्री गोविन्द ढनढनिया—कलकत्ता (प० बंगाल)
५०. श्री निखिल शिवहरे—दमोह (म० प्र०)
५१. श्री बी० भी० नागोरी—कलकत्ता (पं० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा—समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री चितुभाई भलाभाई पटेल—खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एस० सी० डाबरीवाला—कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण दत्ता—जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री बृजेश चन्द्र बाजपेयी—जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ—कलकत्ता (प० बं०)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्याय—एलेन गंज, इलाहाबाद
५९. श्री वसन्त लाल जैन—कैथल (हरियाणा)
६०. डॉ० श्यामसुन्दर बोस—दूधपुरा बाजार (समस्तीपुर)
६१. श्री केशव दत्त वशिष्ठ—हिसार (हरियाणा)
६२. श्री के० सी० बागरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
६३. मधु खेतान—कलकत्ता (प० बंगाल)
६४. प्रधान अध्यापिका—डोरांडा गर्ल्स हाई स्कूल, रांची
६५. रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम—मद्रास
६६. श्री विनयशंकर सिन्हा—दाऊदपुर, छपरा
६७. रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम—इलाहाबाद
६८. श्रीमती मीरा मित्रा—इलाहाबाद
६९. स्वामी शान्ति नाथानन्द—रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद
७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे—दादर, बम्बई

---

# इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

# विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—७ नवम्बर—१९८८ अंक—११

इष्टदेव का हृदय कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक
शिशिर कुमार मल्लिक
श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय :
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

| | |
|---|---|
| आजीवन सदस्य | २०० रु० |
| वार्षिक | २० रु० |
| रजिस्टर्ड डाक से | ३५ रु० |
| एक प्रति | २ रु० ५० पैसे |

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें :

## श्रीरामकृष्ण ने कहा है

( १ )

कलवार की दुकान में बहुत शराब रहती है, पर कोई आधी बोतल तो कोई एक या दो बोतल पीकर ही मस्त हो जाता है। इसी प्रकार, भगवान् तो अपार आनन्द के सागर हैं, परन्तु भक्तगण थोड़ी-बहुत मात्रा में उस आनन्द का उपभोग कर तृप्त हो जाते हैं।

( २ )

जिस प्रकार सरल बालक रुपया-पैसा सब छोड़ गुड़िया को उठा लेता है उसी प्रकार विश्वासवान् भक्त भी संसार का सब धन-मान आदि छोड़कर ईश्वर को ही ग्रहण करता है। दूसरा कोई ऐसा नहीं कर पाता।

( ३ )

जीव के मरे बिना शिव नहीं आता (अर्थात् जीवत्व के नष्ट हुए बिना शिवत्व प्राप्त नहीं होता)। फिर, शिव के शव बने सिवा माँ आनन्दमयी उसके वक्षःस्थल पर नृत्य नहीं करती (अर्थात् इस शिवत्व-अभिमान का भी अतिक्रमण करने के बाद ही सर्वोच्च आनन्द की अवस्था प्राप्त होती है।)

( ४ )

सांसारिक विषयों की चिन्ता करते हुए मन को अस्थिर न होने दो। जो कुछ करना आवश्यक हो उसे ठीक समय पर करो, मन को सदा भगवान् में मग्न रखो।

# श्रीरामकृष्ण भजन

—श्री[illegible]
नागपुर

(राग—पटदीप ताल—तीन ताल)

ठाकुर कब खोलोगे द्वार।
अन्तर्यामी होकर भी क्यों
सुनते नहीं पुकार ॥ध्रु०॥

कृपा लुटाने जग को तुमने
लिया दिव्य अवतार।
कब पहुँचेगी मुझ तक बोलो
तव करुणा की धार ॥ १

प्रभु पावन पद-कमल तुम्हारे
भव-जल में आधार।
हे करुणामय दे चरणाश्रय
लेते क्यों न खबार ॥ २

ठाकुर कब खोलोगे द्वार।
अन्तर्यामी होकर भी क्यों
सुनते नहीं पुकार ॥

# एक प्रणति : एक प्रणाम

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

आपकी सेवा में विवेक शिखा का यह "स्वामी माधवानन्द अंक" प्रस्तुत करते हुए मैं अपार हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। मुझे खेद है कि अपने सीमित साधनों और आर्थिक सीमाओं के कारण अपनी पूर्व कल्पना के अनुरूप इसे प्रकाशित नहीं कर सका। इस अंक के प्रकाशन का पूरा श्रेय स्वामी शशांकानन्द जी को है। मैं उनका आभारी हूँ।

श्रीमत् स्वामी माधवानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ एवं मिशन के नौवें अध्यक्ष थे। जगज्जननी श्रीमाँ सारदा देवी उन्हें देखते ही कह उठी थीं—"यह तो जैसे सोने से मढ़ा हुआ हाथी का दाँत है।" पुनः उन्होंने इनके विषय में कहा था—"ये लोग ही मेरे सिर के मुकुट मणि हैं। जन्म-जन्म में मुझे ऐसे ही पुत्र प्राप्त हों।"

स्वामी माधवानन्द जी का पूर्वाश्रम का नाम था—निर्मल कुमार वसु। जन्म हुआ था वंगाल (वंगला देश) के नदिया जिले के बाग आँचरा ग्राम में १५ दिसम्बर, १८८८ ई० को। पिता का नाम था हरि प्रसाद वसु—एम० ए० बी० एम०। माँ थीं श्रीमती विन्दु वासिनी देवी। दोनों धर्मप्राण व्यक्ति। निर्मल थे माता-पिता की प्रथम सन्तान।

निर्मल आरम्भ से ही मेधावी एवं धर्म पिपासु थे। प्रवेशिका परीक्षा वोलपुर के वाँधगोड़ा स्कूल से पास करने पर आइ० ए० (तव एफ० ए०) की पढ़ाई उन्होंने की विहार के मुंगेर कॉलेज में। यहाँ उन्हें हिन्दी का अच्छा ज्ञान हो गया। अँग्रेजी ऑनर्स पढ़ने वे प्रेसिडेन्सी कॉलिज, कलकत्ता गये और वहाँ वे उसी ईडन हॉस्टल में रहते थे जहाँ राजेन्द्र प्रसाद (वाद में भारत के प्रथम राष्ट्रपति) भी रह कर अध्ययन कर रहे थे। राजेन्द्र वाबू उनसे क्लास में सिनियर थे और मेधाविता के आधार पर हॉस्टल के प्रीफेक्ट थे। उसी आधार पर वाद में निर्मल भी उसी हॉस्टल के प्रीफेक्ट हुए थे। राजेन्द्र वाबू से निर्मल महाराज की प्रगाढ़ मैत्री थी। उसी छात्रावास में राजेन्द्र वाबू के सहपाठी सीतापति वंधोपाध्याय भी पढ़ते थे जो बड़े धर्मनिक थे। उनसे भी निर्मल की मित्रता हुई और दोनों प्रायः ही धर्म चिन्तन किया करते और उनकी धर्म-चर्चा का विषय मुख्यतः श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द ही था। सीतापति भी वाद में रामकृष्ण मिशन के संन्यासी हुए। नाम हुआ – स्वामी राघवानन्द।

उसी समय निर्मल के जीवन में आये "रामकृष्ण वचनामृत" के लेखक मास्टर महाशय। उनके सम्पर्क से ही निर्मल में श्री माँ सारदा के दर्शन की तीव्र लालसा जगी थी। और १९०८ ई० में उन्होंने श्रीमाँ का प्रथम दर्शन किया और श्रीमाँ ने उन्हें देखते ही कहा था—यह तो जैसे सोने से मढ़ा हुआ हाथी का दाँत है।

निर्मल में धर्मकुलता बढ़ती गयी। बी० ए० ऑनर्स (अंग्रेजी) की परीक्षा पास की। बंगला में सर्वाधिक अंक प्राप्तकर वंकिम पदक पाया और चले आये मद्रास रामकृष्ण मिशन जहाँ स्वामी रामकृष्णानन्द और स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज की कृपा पायी। कई बार मिशन छोड़कर उन्हें घर आना पड़ा और इसी बीच उन्होंने अंग्रेजी

में एम० भी कर लिया। पर वे घर में रह नहीं सके। माँ-बाप भी समझ गये—सभी चीजें सब के लिए नहीं होतीं। यह लड़का घर में रहने के लिए नहीं जन्मा है। इसके मन-प्राण ईश्वर-निवेदित हैं। उस पथ पर ही इसका जीवन सार्थक होगा।" और माँ बाप ने अश्रुपूरित नेत्रों से उन्हें विदा किया—रामकृष्ण मठ के लिए।

मठ में आते ही उनकी प्रतिभा खिलने लगी। १९१८ ई० से १९२३ ई० तक वे मायावती आश्रम तथा १९२९ तक सैनफ्रांसिको (अमेरिका) की वेदान्त सोसाइटी के अध्यक्ष रहे। फिर रामकृष्ण मठ के सचिव, सह अध्यक्ष और १९६२ ई० के ४ अगस्त को वे निर्वाचित हुए रामकृष्ण मठ और मिशन के नौवें अध्यक्ष।

बंगला और अंग्रेजी के अतिरिक्त माधवानन्द जी हिन्दी के भी पंडित थे। अद्वैत आश्रम से प्रकाशित हिन्दी मासिक पत्रिका "समन्वय" के वे सम्पादक थे और महाकवि निराला थे सह सम्पादक। उन्होंने कथामृत के कुछ अंशों का हिन्दी में अनुवाद किया और उसे प्रकाशित भी कराया। हिन्दी, अँग्रेजी और बंगला—ये ही वे त्रिभुज हैं जिनकी आधार शिला पर रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा भारत और विश्व में अप्रतिहत—अबाध गति से फैल सकती है। स्वामी माधवानन्द ने इस तथ्य को समझ लिया था और आज रामकृष्ण मिशन केवल धर्म समन्वय ही नहीं भाषा-समन्वय की दृष्टि से भी जो अद्भुत कार्य कर रहा है उसके मूल में स्वामी माधवानन्द जी की देन अप्रतिम है।

ध्यान और कर्म के दो कूलों के बीच स्वामी माधवानन्द जी की जीवन सरिता सदैव प्रवहमान रही। उन्होंने श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द की वाणी और आदर्श को अपने जीवन में उतार लिया था। ऐसा लगता था मानो स्वयं वे दोनो उनके माध्यम से अपनी ही बात कह रहे हों।

एक दिन एक नये साधु ने उनसे पूछा—'महाराज, अपलक नेत्रों से बाहर आप क्या देख रहे हैं?'

थोड़ा रुककर कुछ हँसते हुए उन्होंने कहा—"देखो, वह नारियल का पेड़। जिस तरह मृदु मन्द वातास बहता है उसी तरह उसके पत्ते भी हिलते हैं—कभी बायें, कभी दायें, कभी सामने कभी पीछे और कभी बिलकुल स्थिर हो रुक जाते हैं। इसी से तो वह पेड़ आँधी को झेल लेता है, कभी टूटता नहीं। हम सब भी यदि सदैव श्रीरामकृष्ण की इच्छा के अनुसार ताल देकर चल पाते तो कितना अच्छा होता?"

एक दिन एक तरुण साधु ने उनके बाल मुण्डित किये। साधु प्रसन्न थे अपनी कार्य कुशलता पर। बोले—'महाराज, देखिए कितना अच्छा मैंने बाल बनाया है। ठीक हज्जाम की तरह।' माधवानन्द जी ने कहा—"देखो, आदमी या किसी दूसरे प्राणी की नकल नहीं करो। हर कार्य में एकमात्र ठाकुर का ही अनुसरण करो। 'मेरा चिन्तन, चलना-फिरना, काज कर्म सभी देवता की भाँति हैं। मैं शिव की तरह बैठा हूँ, शिव की तरह ध्यान करता हूँ'—इसी तरह की बात ही सदा सोचने और बोलने की चेष्टा करना।" यही तो श्रीरामकृष्ण भी कहते थे—'जो जैसा सोचता है वैसा ही हो जाता है।"

तो यह थे पूज्यपाद स्वामी माधवानन्द जी महाराज। १९६५ ई० के ६ अक्टूबर को दो बार—माँ, माँ कहते हुए वे श्रीरामकृष्ण महासागर में लीन हो गये। उनके जन्म के सौवें वर्ष के अवसर पर उन्हें सश्रद्ध शत-शत प्रणाम, शत-शत नमन्। जय श्रीरामकृष्ण! जय माँ सारदा देवी! जय स्वामी जी!

# धर्म-साधना

— स्वामी माधवान*

(ब्रह्मलीन श्रीमत् स्वामी माधवानन्दजी महाराज रामकृष्ण मठ और मिशन के अध्यक्ष थे। जब वे रामकृष्ण संघ के महासचिव थे तो १२ मई, १९४० को उन्होंने रामकृष्ण मठ, मद्रास में भक्तों की एक सभा को सम्बोधित करते हुए प्रस्तुत उपदेश प्रदान किया था। वह उपदेश एक लेख के रूप में 'वेदान्त केसरी' अंगरेजी मासिक के जुलाई १९४० के अंक में प्रकाशित हुआ था। उसका हिन्दी अनुवाद 'विवेक ज्योति' में प्रकाशित हुआ था। वहीं से यह साभार गृहीत है।—सं०)

धर्म का व्यावहारिक दृष्टिकोण सर्वाधिक महत्व पूर्ण है। इस व्यावहारिक जगत् में हम सभी, वस्तुतः धर्म-साधना में अनुरक्त हैं। जो व्यक्ति यथार्थतः तृषित है वह कभी भी जल के गुण और स्वभाव का सैद्धान्तिक विवेचन करना नहीं चाहेगा बल्कि वह तो जल की खोज कर अपनी पिपासा को शान्त करेगा। प्रत्येक भक्त या साधक आरम्भ से ही धर्म के प्रति कुछ न कुछ धारणा रखता है, जो साधना की परिपक्वता के साथ साथ अधिक स्पष्ट एवं दृढ़ होती जाती है। हम सभी जानते हैं कि पार्थिव जीवन सुखमय नहीं है। हमारा दैनिक अनुभव बताता है कि हमारा जीवन बहुधा दुःखों का घर है। इसके अभिज्ञान एवं शाश्वत वस्तु की खोज से ही आध्यात्मिक जीवन का सूर्योदय होता है।

मनुष्य में तीन प्रकार की प्रेरणाएँ होती हैं। सर्वप्रथम प्रेरणा है अस्तित्व की; प्रत्येक प्राणी जीवित रहना चाहता है, कोई भी मरना नहीं चाहता। समस्त विश्व ही जीने के लिए उन्मत्त है। यह अनन्त-जीवन की इच्छा प्रत्येक प्राणी में निहित है। दूसरी है ज्ञान की प्रेरणा। रास्ते में अपने पिता के साथ जाता हुआ बच्चा उससे प्रश्न करता है, 'पिताजी! यह क्या है? वह क्या है?' हमारे जीवन में अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास रहता है। ज्ञानप्राप्ति जीवन का एक अविकल अंग है। और तीसरी है सुख की प्रेरणा। सुख की अपनी-अपनी धारणा के अनुसार हम सांसारिक वस्तुओं से अधिकाधिक सुख पाना चाहते हैं। सुख के प्रति हमारी धारणा कितनी भी भिन्न क्यों न हो, मनुष्य किसी न किसी प्रकार से किसी सुख की प्राप्ति के लिए सदा ही संघर्ष कर रहा है। अस्तित्व, ज्ञान और आनन्द के लिए हमारी प्रेरणा ही हमारे जीवन के तीन प्रधान तथ्य हैं, जब तक हम मनुष्य हैं ये हमारे साथ आजीवन रहेंगे। यथासम्भव श्रेष्ठ रीति से भूमा, ज्ञान और आनन्द पाने के लिए ही हमारी सारी चेष्टाएँ होती हैं। धर्म की वास्तविक समस्या है इस भूमा की खोज।

एक तथ्य जिससे हम सभी परिचित हैं, है मृत्यु। अपनी सारी चेष्टाओं के बावजूद भी हम इस विचार से मुक्त नहीं हो सकते कि मृत्यु के समय स्वास्थ्य, धन, सुन्दरता, सभी कुछ हमसे छूट जायेगा। यथार्थ धार्मिक व्यक्ति तो वह है जो मृत्यु पर विजय प्राप्त करना चाहता है। विवेकपूर्ण शास्त्रविचार, साधु-संग और अपने अनुभवों से, तथा अन्य अनेक साधनों से हम जान लेते हैं कि इस संसार में कुछ भी नित्य नहीं है। हमें अपने सांसा-

रिक जीवन से सन्तोष नहीं है। इसलिए हम ऐसे जीवन, ज्ञान और आनन्द को पाने का प्रयास करते हैं जो नित्य है। और यही आध्यात्मिक जीवन का श्रीगणेश है। कालान्तर में हमें यह अनुभव हो जायेगा कि ईश्वर-साक्षात्कार के अतिरिक्त यहाँ कुछ भी हमें अनन्त जीवन, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द की प्राप्ति नहीं करा सकता। एकमात्र भगवान् ही हमारी पूर्ण जीवन, पूर्ण ज्ञान और पूर्णानन्द की अभिलाषा पूर्ण कर सकते हैं।

जब हम महापुरुषों के सान्निध्य में आते हैं तो हम उनमें बहुत सी बातें समान देखते हैं वे भौतिक नाशवान् वस्तुओं की चर्चा नहीं करते बल्कि इन्द्रियातीत तत्व को मनोरम रंगों में चित्रित करते हैं। हमारे ऋषियों ने यह घोषणा की है कि यदि हम नित्य एवं अनन्त सत्ता, ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति करना चाहते हैं तो हमें इन्द्रियों से परे जाना होगा—भौतिक वस्तुओं से अतीत होना होगा। यह इन्द्रियातीत अवस्था एक वास्तविकता है। वर्तमान युग में भी श्रीरामकृष्ण-जैसे सन्त और ऋषियों ने उस इन्द्रियातीत सत्य की अनुभूति की है। इस सत्य को काली, ब्रह्म या अन्य किसी भी नाम से पुकार सकते हैं। यह कल्पना नहीं है। इसी जीवन में ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता हैं। अतः अपनी शक्तियों को उस अनन्त सत्ता की उपलब्धि की ओर प्रेरित करो।

यह सत्य है कि स्वभावों में भिन्नता होने के कारण मार्ग विभिन्न हैं, ईश्वर के प्रति दृष्टिकोण में भेद हो सकता है; किन्तु वह भिन्नता केवल सतही है और मूलतः सभी भेद एक ही तत्व—ईश्वर—में विलीन हो जाते हैं। ईश्वर व्यक्ति-विशेष हो सकते हैं और निर्विशेष भी। वे शिव, कृष्ण और शक्ति भी हो सकते हैं; परन्तु ये सब परम सत्य ही हैं। सत्य का अन्वेषक होने के नाते हमारा कर्तव्य होना चाहिए कि हम एक सामान्य आधार को खोज लें और अपने उद्देश्य की ओर बढ़े चलें, फिर हमारा मार्ग चाहे कर्म हो या ज्ञान, योग हो या भक्ति जो भी शास्त्र तुम्हें रुचिकर लगता हो उसे ध्यान से पढ़ो तो सर्वत्र यही उपदेश पाओगे। जहाँ तक हो सके आध्यात्मिक बनो। इन्द्रियाँ ऐहिक सुख और ऐहिक ज्ञान दे सकती हैं परन्तु वे मन को स्थायी रूप से तृप्त नहीं करतीं। इसलिए अपने मन को इन्द्रियों से हटाकर इन्द्रियातीत सत्य पर केन्द्रित करो।

दूसरे शब्दों में, इसका तात्पर्य यह है कि ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। प्रश्न उठता है कि यह कैसे हो? इस सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण ने एक बहुत ही सुन्दर उपदेश दिया है—'ईश्वर का ध्यान करो अँधेरे कोने में, एकान्त वन में या गहन हृदय-मन्दिर में।' यह उपदेश तीन प्रकार के लोगों के लिए है। जिनके पास वन में जाने का अवकाश है उनके लिए श्री रामकृष्ण वन में ध्यान करने का उपदेश देते हैं, क्योंकि उनके लिए विक्षेपपूर्ण संसार की बजाय वन में साधना करना सुगम है। रसायन शास्त्री जानते हैं कि नाजुक तराजू से ऐसे स्थान पर तोलना कठिन है जहाँ हवा बहती हो। इसी प्रकार एकान्त वन में ही ईश्वर-चिन्तन करना चाहिए। जो वन को नहीं जा सकते उनके लिए घर के एकान्त कोने का उपदेश दिया गया है। यदि किसी को घर का कोना भी नहीं मिल सकता, और वह समाज से भी दूर नहीं जा सकता, तब उसे अपने को अपने मन के एक कोने में बन्द कर लेना चाहिए, समाज में रहते हुए भी अपने मन को अन्तर्मुखी कर लेना चाहिए।

अपने मन को अपने हृदय पर केन्द्रित करो और यह सोचने का प्रयास करो कि भगवान् तुम्हारे हृदय में वास करते हैं और उनका ध्यान करो। इससे तुम्हें कुछ धैर्य और शान्ति अवश्य मिलेगी। तुम्हें शास्त्रों के विभिन्न आदेशों का समन्वय कर

लेना चाहिए। सभी शास्त्रों एवं महापुरुषों का यही उपदेश है :—'ध्यान करो। मन को ईश्वर पर केन्द्रित करो, ईश्वर सम्बन्धी सत्यों पर केन्द्रित करो; श्रीगुरु प्रदत्त इष्ट का ध्यान करो।' यदि गुरु न मिले हों तो प्रभु का जो भी रूप तुम्हें रुचिकर लगे उसी का ध्यान करो— चाहे कुछ क्षण के लिए ही क्यों न हो।

हमारा प्रत्येक विचार हमारे मन पर अपना प्रभाव छोड़ता जाता है। ग्रामोफोन रिकार्ड की लीकों के समान विचारों की पुनरावृत्ति से मस्तिष्क में भी संस्कार बनते जाते हैं। इन्द्रिय-संस्पर्शों ने पहले से ही हमारे मन पर अपनी छाप डाल रखी है। विषयों से सम्पर्क होने पर यह छाप मन में समान विचारों को उत्पन्न करती है। हमने भूतकाल में कुछ वस्तुओं के बारे में प्रसन्नता से या अरुचि से सोचा है। उन वस्तुओं के सामने आने पर हमारे मन में पुनः वैसे ही संस्कार अपने आप उत्पन्न हो जाते हैं।

हम आज जो कुछ हैं वह विचारों का ही फल है। अतएव हम भविष्य में वही बनेंगे जो कि हम बनना चाहते हैं। अपने में शुभ विचारों की वृद्धि करने का सबसे समर्थ उपाय है ध्यान। यह हमारे अशुभ संस्कारों को हटाने में सहायता करता है। इसलिए धर्म साधना के लिए ध्यान करना आवश्यक है।

आरम्भ में ध्यान करना कठिन होता है क्योंकि ईश्वर सम्बन्धी विचार हमारे लिए एकदम नये होते हैं। बेला बजाना सीखने की भाँति ध्यान भी धीरे धीरे होना चाहिए। बेला बजाना पहले पहल कठिन और अरुचिकर होता है। निरन्तर साधना के द्वारा क्रमशः उसके लिए रुचि उत्पन्न होती है और तब हम उसे छोड़ नहीं सकते। तब व्यक्ति अपने एवं दूसरों के आनन्द के लिए बेला बजाता है। इसी प्रकार ध्यान में भी रुचि एवं रस उत्पन्न करना चाहिए; तब उसमें आनन्द आयेगा और अन्त में पूर्णता प्राप्त होगी। अर्जुन ने जब श्रीकृष्ण से मन को वश में करने के लिए कहा तो उसने देखा कि यह हवा पकड़ने के समान कठिन है। तब श्रीकृष्ण ने उसे अभ्यास और वैराग्य का यही पुरातन उपाय बताया। निरन्तर अभ्यास के द्वारा मन वश में होता है। पर ध्यानाभ्यास के साथ साथ वैराग्य भी होना चाहिये।

यदि तुम वस्तुतः ईश्वर को चाहते हो तो ईश्वरप्राप्ति के पथ में बाधास्वरूप वासनाओं का त्याग करना चाहिए। इस प्रकार के त्याग के बिना आध्यात्मिक उन्नति असम्भव है। कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो इन्द्रियों के अधीन होते हुए भी इन्द्रियातीत होना चाहते हैं। उनके प्रयास स्वभावतः निष्फल हो जाते हैं। जब नाव पानी में बँधी हो तब उसे आगे बढ़ाने के लिए खेने से भी कोई लाभ नहीं होगा। प्रायः हम यह समझकर अपने आप को धोखा दे बैठते हैं कि हम ईश्वर को चाहते हैं, किन्तु यथार्थतः हम उसे नहीं चाहते। गिरीशचन्द्र घोष के एक नाटक में किसी पात्र के द्वारा अभिव्यक्त किया गया, 'मैं उसे भूल नहीं सकता!' इसके प्रत्युत्तर में गुरु ने कहा, 'तुम उसे भूल नहीं सकते? कहो कि तुम उसे भूलना नहीं चाहते।' यही रहस्य है। हमारे हृदय में छिपी हुई इच्छाओं को भगवान् जानते हैं। इसलिए सर्वप्रथम यह देख लेना चाहिए कि हमारे वचन और कार्य वास्तव में एक ताल में हैं या नहीं। संक्षेप में यदि कहें तो निश्छलता ही उपाय है! श्रीरामकृष्ण के द्वारा इतने अल्प समय में ईश्वर-साक्षात्कार कर लेने का क्या कारण है? उनकी निश्छलता और अटल प्रयास ही। वे समझौते की बात नहीं मानते थे। वे कहते थे कि शुद्ध एवं शान्त होने पर मन ही गुरु बन जाता है। कभी कभी तो हम अनुभव करते हैं कि एकाग्र ईश्वर

ही प्राप्त करने योग्य वस्तु है, संसार नहीं; पर हमारा यह अनुभव क्षणिक होता है। हमें इस अनुभव को स्थायी बना लेना चाहिए। दूसरे शब्दों में, यदि हम ईश्वर को चाहते हैं तो हमें उसके अतिरिक्त सभी वस्तुओं का त्याग करना चाहिए यदि हम निष्ठावान् और प्रयत्नशील हों तो ईश्वर की ओर से सहायता अवश्य आयेगी। जैसे हम ईश्वर की ओर चलते हैं, वैसे ही वे भी हमारी ओर आते हैं। यदि हम उनकी ओर एक कदम चलते हैं तो वे हमारी ओर दश कदम आते हैं। श्रीरामकृष्ण ने हमें यह एक महान् आश्वासन दिया है।

ईश्वर अपने स्वभाव से अनन्त हैं। यदि ऐसा न होता तो हमारा भरसक प्रयास भी उन तक पहुँचने में असमर्थ ही होता। उनकी अनन्त कृपा से ही हम अपने प्रयासों में सफल होते हैं। हमारे घरों में जब बच्चे छोटे होते हैं और उन्हें बोलना नहीं आता, तो वे केवल 'ला' 'ला' ही कह पाते हैं, पर उसी से पिता प्रसन्न होते हैं और उत्तर देते हैं। इसी प्रकार ईश्वर भी हमारे निष्ठापूर्ण थोड़े से प्रयास से तृप्त हो जाते हैं और हमारी पुकार का उत्तर देते हैं। वे करुणा और प्रेम के भण्डार हैं। वे अपने नन्हें बच्चों से बहुत प्रसन्न रहते हैं। वे उनके हृदय की गतिविधियों को जानते हैं और उनकी आवश्यकताओं को आशा से अधिक पूरी करते हैं। तनिक सा सच्चा प्रयास भी उनकी महती कृपा को खींच लाता है। किन्तु खेद है कि हम यह तनिक सा प्रयास करने में भी असमर्थ हैं।

एक बार स्वामी विवेकानन्द ने स्वामी तुरीयानन्द से कहा--क्या ईश्वर शाकसब्जी की तरह हैं जिन्हें किसी अन्य वस्तु के बदले में खरीदा जा सके? क्या तुम ईश्वर को मोल ले सकते हो? ऐसा नहीं हो सकता। तुम्हें कठोर साधना करनी होगी। याद रखो कि साधना और सिद्धि में त्रैराशिक नियम का सम्बन्ध नहीं है। हमारे हृदय की सारी शक्ति ईश्वर की ओर अभिप्रेरित होनी चाहिए। हमें उनके लिए अपना सर्वस्व त्याग करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। श्रीरामकृष्ण का एक उदाहरण ले लें। समुद्र के बीच में चलते हुए जहाज के मस्तूल पर बैठा हुआ पक्षी किनारे पर पहुँचने के लिए बार बार विभिन्न दिशाओं में उड़ता है; किन्तु अन्त में वह थक जाता है और विश्राम पाने के लिए आखिर मस्तूल पर ही लौट आता है। और जब जहाज बन्दरगाह पर लगता है तब अनायास ही किनारे पहुँच जाता है। उस पक्षी की भाँति हमें भी भरसक प्रयत्न करके यह अनुभव कर लेना चाहिए कि अपनी समस्त चेष्टाओं के बावजूद हम निष्फल रहे। अतएव साधना मानो पंखों को थकाने के लिए आवश्यक है और उससे हमारा अहं सम्पूर्णतया नष्ट हो जाना चाहिए। आँख-मिचौनी का खेल खेलकर ईश्वर हमारे अहंकार को बाहर निकाल फेंकते हैं। सामान्यतः हम अपने अधिकार और सामर्थ्य की बात सोचते हैं; हम सोचते हैं कि हमें कुछ न कुछ करना चाहिए; हम कहते हैं कि हम यह कर सकते हैं, वह कर सकते हैं तथा ईश्वर को अपने प्रयासों से प्राप्त कर सकते हैं। इसका कारण यह है कि हम संसार में अपने अनुभव एवं अहंभाव के द्वारा बहुत सी वस्तुएं प्राप्त कर लेते हैं, इसलिए हम ईश्वर को भी उसी ढंग से पाने का प्रयास करते हैं। किन्तु हमें समझ लेना चाहिए कि ये सब प्रयास हमारे मन को शुद्ध करते हैं और उसे ईश्वर में लगाये रखने में सहायता करते हैं। इसलिये ये आवश्यक हैं। यदि तुम अपने को साधना में प्रवृत्त नहीं करते तो तुम पूर्ण शरणागति प्राप्त नहीं कर सकते। यह शरणागति तो ईश्वर-प्राप्ति के लिए भरसक प्रयत्न करने से ही आती है। जब मनुष्य अपने प्रयासों की अन्तिम सीमा को भी निरर्थक जान लेता है तब वह समर्पण करता है।

यही यथार्थ प्रपत्ति है और यह अध्यवसायपूर्वक साधना के अन्त में प्राप्त होती है।

माँ अपने बच्चे को कुछ खिलौने दे देती है और जब तक वह खेलता रहता है वह अपना काम-काज करती रहती है। वह तब तक बच्चे की ओर ध्यान नहीं देती जब तक वह खेलता रहता है या थोड़ा-बहुत रोता रहता है; किन्तु जिस क्षण कोई खतरा आने से वह जोरों से रोने लगता है तो माँ एकदम दौड़कर उसके पास आ जाती है। वह जानती है कि बच्चे का रोना बनावटी है या असल। वह यह समझती है कि उसे जाना चाहिये या नहीं। इसी प्रकार, जब ईश्वर के लिए हमारा रुदन हृदय से होता है तो वे सुनते हैं। तात्पर्य यह है कि अपनी सम्पूर्ण शक्ति ईश्वर-प्राप्ति में लगा देनी चाहिए। जैसे परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए तुम अपनी सारी शक्ति लगा देते हो, उसी प्रकार ईश्वर-प्राप्ति के लिए भी तुम्हें जी-जान से जुट जाना चाहिए।

महर्षि पतंजलि अपने योगसूत्रों में ध्यान के तीन लक्षणों की चर्चा करते हैं—दीर्घकालनैरन्तर्य-सत्कारासेवितः'। दीर्घकाल का अर्थ है बहुत काल तक। नैरन्तर्य का अर्थ है निरन्तर, सब समय। अभिप्राय यह है कि नियत समय पर अभ्यास करने के साथ-साथ मन को निरन्तर ईश्वर में लगाये रखना चाहिए। किसी नियत समय पर नियमित रूप से ईश्वर का ध्यान करने से ही नहीं होगा; बल्कि मन के एक अंश को सदैव ईश्वर में लगाकर रखना होगा। तीसरा लक्षण है सत्कार यानी तत्परता। कुछ भी दिखाऊ नहीं होना चाहिए; जो कुछ भी करो उसके प्रति ऐकान्तिक श्रद्धा होनी चाहिए। सफलता के लिए दीर्घ, निरन्तर और निष्कपट अभ्यास आवश्यक है।

इसलिए अपनी साधना को इन तीन गुणों की कसौटी पर कसो। ईश्वर-साक्षात्कार को अपने जीवन का चरम ध्येय बना लो। एक हिन्दू होने के नाते तुम्हें इसी जीवन में ईश्वर-प्राप्ति कर लेनी चाहिए। जीवन का यह सर्वोच्च अनुसन्धान तुम्हारी सम्पूर्ण शक्ति की माँग करता है। यह मत कहो कि यौवन तो मौज के लिए है, वृद्धावस्था में धर्म को देख लेंगे। वृद्धावस्था में तुम साधना करने योग्य नहीं रह जाओगे। अतएव अभी से अध्यवसाय पूर्वक साधना में लग जाओ। यदि तुम्हारी मनोवांछा पूर्ण न हो तो अपने ही को दोष दो। भविष्य के लिए कुछ भी न छोड़ो, अन्यथा परिणाम कुछ भी न होगा। उपनिषद् कहते हैं, 'जो कुछ तुम यहाँ और अभी पाते हो वही तुम्हारा है।' इसलिए वर्त्तमान सुअवसर का सदुपयोग करो और ईश्वर-साक्षात्कार कर लो। काम-काज करते हुए भी आध्यात्मिक पक्ष पर बल दो। गीता के अनुसार, तनिक सी श्रद्धा भी बहुत कुछ कर लेगी, थोड़ा सा प्रयास भी महान् भय से हमें बचा लेगा।

विज्ञान में हम द्रवस्थिति विज्ञान (hydrostatic paradox) की बात सुनते हैं। जब एक छोटा बर्तन जलाशय से संयुक्त कर दिया जाता है तो दोनों में ही जल समतल हो जाता है। इसलिए अपने को ईश्वर से संयुक्त कर दो, निश्छल हो जाओ और भगवदर्थ कर्म करो। बंगाल के महान् सन्त रामप्रसाद का कथन है, 'मैं तुम्हें अपनी अभिरुचि के अनुसार मेरी श्यामा माँ की पूजा करने को कहता हूँ।' अपने हाथों को प्रभु का नाम गिनने के काम में लाओ अर्थात् जप करने में लगाओ। भोजन करते समय विचार करो कि तुम अपने इष्ट को नैवेद्य चढ़ा रहे हो। प्रत्येक शब्द ईश्वर का मंत्र है और इसलिए जब भी तुम कुछ सुनो तब यही सोचो कि तुम भगवान का नाम सुन रहे हो। प्रत्येक मानव-शरीर में ईश्वर रहते हैं; और इसलिए जब कभी तुम चलो तब यही समझो कि तुम प्रदक्षिणा कर रहे हो। सदैव

नेत्रों से उनका रूप देखो; इत्यादि। इस प्रकार तुम्हें अपनी समस्त लौकिक गतिविधियों को आध्यात्मिक बना लेना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य अपने दैनिक जीवन में ऐसा कर सकता है।

संसार में रहते हुए भी ईश्वर पर बल दो। अपने आदर्श को छोटा मत करो। संसार में अपना कार्य करो और यह मानो कि ईश्वर ने ही तुम्हें वह कार्य दिया है और तुम्हें देख रहा है। जब तुम एकान्त और अवकाश पाओ तो अपने मन को ईश्वर में लगा दो और उनका नाम जपो। जब तुम्हारा शरीर क्लान्त हो जाय और तुम लेटे हुए हो, तब भी ईश्वर का चिन्तन करो। ईश्वर सम्बन्धी विचार स्नायुओं को प्रशमित करते हैं, मन को शान्त बनाते हैं तथा शीघ्र विश्रान्ति देते हैं। यही रहस्य है। जब तुम सर्वत्र ईश्वर को देखते हो तब कोई भी हानि नहीं होती। वन में रहनेवाले सन्तजन बाघ को देखते हैं परन्तु उनसे डरते नहीं। ऋषिगण बाघ में ईश्वर के दर्शन करते हैं, इसलिए बाघ उन्हें हानि नहीं पहुँचाते। महान् सन्त पवहारी बाबा ने जब उस चोर को देखा जो उनकी गुफा में चोरी करने के लिए घुसा था और पकड़े जाने के डर से भाग रहा था, तो उन्होंने कहा, 'हे प्रभो! यह सब तुम्हारा ही है, मैं ही यह सब तुम तक पहुँचा देता हूँ।' इतना कहकर सारी वस्तुएँ उसके सामने रख दीं। इस सन्त ने चोर में ईश्वर को देखा। और जब बाद में स्वामी विवेकानन्द की उसी चोर से भेंट हुई तब तक वह चोर सन्त बन चुका था। श्रीरामकृष्ण बहुधा वेश्या में भी भगवती के दर्शन कर समाधिस्थ हो जाते थे। एक महिला को नीली साड़ी पहने हुए देखकर उनको माँ सीता की याद हो आयी। जब उन्होंने शराबियों का समूह देखा तो उन्हें आध्यात्मिक नशा होने लगा। उनकी साधना का फल ही ऐसा था।

ईश्वर ही सत्य हैं। जैसे समुद्र में डूबे हुए घड़े के अन्दर और बाहर जल ही जल होता है, उसी प्रकार हम अन्दर और बाहर ईश्वर से ओत-प्रोत हैं। ईश्वर की उपस्थिति का जितना अनुभव कर सकते हो, करो। ईश्वर सम्बन्धी वाद-विवाद में समय नष्ट न करो बल्कि ईश्वर के लिए अपनी पिपासा को तृप्त करो। स्वामी रामकृष्णानन्दजी ने मुझे बताया था, 'जिस प्रकार जल में डूबा हुआ व्यक्ति साँस के लिए तड़पता है, उसी प्रकार ईश्वर के लिये व्याकुल होना चाहिए।' ईश्वर को पाने के लिए यथार्थ इच्छा करनी चाहिए। यदि तुम्हें ईश्वर के अतिरिक्त और किसी वस्तु की इच्छा है तो अपने मन को बताओ कि तुम वास्तव में क्या चाहते हो और अपने को धोखा न दो। यदि तुम्हारी इच्छाएँ अपनी पूर्त्ति के लिए अधिक परिश्रम और शक्ति की अपेक्षा रखती हों तो उन्हें पूर्ण न करो; किन्तु यदि इच्छाएँ छोटी-मोटी हों और अधिक हानिकारक न हों तो उनकी पूर्ति कर लो और मुक्त हो जाओ। ईश्वर से सच्चा प्रेम करो और उन तक पहुँचने का प्रयास करो। यह विश्वास रखते हुए कि ईश्वर तुम्हारी सहायता करेंगे, अपने अभ्यास और साधना की प्रणाली को स्वयं चुन लो। ईश्वर से प्रार्थना करो और उनके लिए यथार्थ व्यथा का अनुभव करो। श्रीरामकृष्ण ने कहा था, 'यदि तुम समूचे हृदय से प्रार्थना करो तो वे अवश्य तुम पर कृपा करेंगे।' उन्होंने कभी मिथ्या वचन नहीं कहे। वे शिक्षा देने आये थे। उन्होंने कहा था, 'यदि तुम यथार्थ में ईश्वर को चाहते हो तो तुम उन्हें शीघ्र ही पा जाओगे। यदि हमारा प्रयास निष्ठा और आकुलता से भरा हो तो ईश्वर-साक्षात्कार में उतना ही समय लगेगा जितना गाय की सींग से सरसों के दाने को नीचे गिरने में लगता है। अपने को ईश्वर का शिशु मानो। उनसे सम्बन्ध तो पहले से है ही, केवल उसे स्मरण में ले आओ। ईश्वर का विचार मन में निरन्तर उसी प्रकार चले जैसे दाँत में लगातार दर्द बना रहता है। मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि इसी जीवन में ईश्वर के दर्शन कर लेना सचमुच सम्भव है। मैं यह कहने की अनुमति लेना चाहूँगा कि मेरे तुच्छ अनुभव तथा श्रीरामकृष्ण देव के पार्षदों के पुनीत सान्निध्य ने मुझमें ऐसा विश्वास भरा है।

# मातृ-प्रसंग में

—ब्रह्मलीन स्वामी माधवानन्दजी महाराज

( श्री श्री माँ सारदा देवी की शतवर्ष जयन्ती संख्या 'उद्बोधन' पत्रिका में प्रकाशित श्री श्री माँ के सम्बन्ध में पूज्य महाराज जी द्वारा लिखित 'मातृ-प्रसङ्ग' नामक बंगला लेख का हिन्दी अनुवाद किया है स्वामी अशोकानन्द महाराज जी ने ।-सं०]

सन् १९०९ ई० के एक दिन की बात स्मरण होती है। पूजनीय शशि महाराज—स्वामी रामकृष्णानन्द जी तब कलकत्ता में बलराम बाबू के घर थे। आध्यात्मिक जीवन में परम सहायक के रूप में दो चार बातें कहने के बाद उन्होंने लेखक से कहा, 'और माँ से दीक्षा ग्रहण करो तो सब ठीक हो जाएगा।" वास्तव में ये लोग (श्री रामकृष्ण देव के शिष्य गण) ही श्री श्री माँ की महिमा यथार्थ रूप में समझ सके थे और इसीलिए वे लोग अत्यन्त विनय के साथ उनके निकट उपस्थित होते थे। संसार की सभी वस्तुओं को मनुष्य अपने-अपने मनोभाव के अनुसार ही देखता है। यदि कोई व्यक्ति जगन्नाथ जी के दर्शन करने जाए और उसे वे एक परिचित पेड़ का तना ही दिखायी दें, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

सन् १९०८ ई० के अन्त में, विद्यार्थी जीवन में ही मैंने अपने अन्य तीन मित्रों सहित जयरामबाटी में श्री श्री माँ के प्रथम दर्शन प्राप्त किये थे। सन् १९१० ई० के ग्रीष्मकाल के प्रारम्भ में मैं मठ के भूतपूर्व अध्यक्ष पूजनीय स्वामी विरजानन्द जी के साथ जयरामबाटी द्वितीय बार गया। उस समय वे मायावती अद्वैत आश्रम के अध्यक्ष थे। मुझे याद है कि माँ अपनी प्रिय सन्तान को अत्यन्त यत्न के साथ खिलाने-पिलाने के लिए कितनी आतुर थीं। उसी समय मैंने उनके श्री मुख से सुना था, ठाकुर ही सब कुछ हैं; साधन भजन सभी के लिए सहज साध्य नहीं है, उसके लिए सर ठंडा रखना पड़ता है तथा संघ कार्य भी ठाकुर की ही सेवा है। सन् १९१३ ई० के अन्त से दो वर्ष तक उद्बोधन में रहने के समय, श्री श्री माँ के कलकत्ते आने पर उनके नित्य दर्शन लाभ का सुअवसर प्राप्त हुआ था। किन्तु उनसे कुछ प्रश्नादि करने की बात मेरे मन में कभी नहीं उठी। उनके श्री चरणों में वास करता हूँ, यह सोचकर ही तृप्ति का अनुभव करता था। सन् १९१८ ई० में जयराम बाटी में मुझे उनके अन्तिम दर्शन हुए थे। उद्बोधन एवं अन्यान्य स्थानों में छोटी मोटी अनेक घटनाओं के माध्यम से उनका सहज, अकृत्रिम मातृ-स्नेह और अहैतुकी करुणा पाकर मैं धन्य हुआ हूँ। इसमें मेरी कुछ भी योग्यता नहीं, यह तो उन्हीं का जगज्जननी-सुलभ माहात्म्य है। बाद में जब भक्तों द्वारा रचित उनके संस्मरण पढ़ता हूँ, तब कभी-कभी मन में यह आता है कि इस प्रकार माँ से कुछ प्रश्नादि करता तो अच्छा होता। किन्तु उन्हीं की इस उक्ति से कि दीक्षा देने के समय उन्होंने शिष्य के लिए जो कुछ करना है कर दिया है, हम आश्वस्त होते हैं। यहीं साधारण गुरु से उनका पार्थक्य देखा जाता है।

श्री श्री माँ के छोटे-बड़े बहुत से जीवन-चरित प्रकाशित हो चुके हैं एवं कहीं न कहीं बहुत लोग उनका पाठ भी कर चुके हैं। उनके आदर्श जीवन और अनेक अमृतोपम उपदेशों से भारतवासीगण विशेषतः भारतीय नारीवृन्द अनेक अनुप्रेरणा प्राप्त करेंगी इसमें सन्देह नहीं। साँचा तैयार हो गया है उससे असंख्य मूर्तियाँ गढ़ी जा सकती हैं। पृथ्वी पर श्री श्री माँ का आगमन इसीलिए हुआ था। भारत

वर्ष में नारी जाति में 'माँ' का स्थाना सर्वोच्च है। श्री माँ सारदा देवी का जीवन इस मातृत्व एवं देवीत्व के संम्मिश्रण से एक अपूर्व महिमा से मण्डित हुआ है। आन्तरिकता होने पर हम उसकी व्याख्या सम्यक्रूप से उपलब्ध कर पाऐंगे एवं उसे कार्य में परिणत करने में समर्थ होंगे। जहाँ पवित्रता और निःस्वार्थता वर्तमान है, जहाँ 'अहं' का लेश मात्र भो नहीं, वहाँ ईश्वरीय शक्ति का विकास अवश्यम्भावी है।

श्री माँ सारदादेवी की समदृष्टि और अनुकम्पा केवल मनुष्य जाति में ही निवद्ध नहीं थी; दूसरे जीवों के लिए भी उनके प्राण व्याकुल हो उठते थे। श्री रामकृष्ण की अपूर्व शिक्षा के फलस्वरूप एवं निज साधना के वल पर श्री माँ सांसारिक एवं आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में चरम अभिज्ञता लाभ कर अन्त में जगत् को सत्य पथ पर परिचालित कर पायी थीं। जड़तापूर्ण १९ वीं शताब्दी के वंगाल के एक अत्यन्त क्षुद्र पल्लीग्राम में उनकी भाँति अद्भुत शक्तिशालिनी महीयसी नारी का आविर्भाव वास्तव में ही जगत की एक आश्चर्यपूर्ण घटना है। वह भारत की ही नहीं समस्त पृथ्वी की नारी जाति के एक महाअभ्युत्थान की सूचना करती है; विशेषतः भारतीय नारीगण श्री श्री माँ की जीवनगाथा से शिक्षा ग्रहण करके अपने सनातन आदर्श को अक्षुण्ण रखते हुए आधुनिक परिस्थिति के अनुकूल जीवन बना सकेंगी। विदेशी नारी जाति भी अपने भीतर भारत के युगयुगान्तर के परीक्षित निवृत्ति मार्ग का परिचय पाऐंगी। यह समग्र जगत् की नारी-जाति के लिए विशेष गौरव की बात है कि श्रीरामकृष्ण ने अपनी विविध साधनाओं के अन्त में अपनी सहधर्मिणी की देवी ज्ञान से यथाविधि पूजा करके उनके पादपद्मों में जपमाला आदि बाह्य उपकरणों के सहित उन सब साधनाओं के फल एवं स्वयं को समर्पित कर दिया।

अपने पति देवता के निकट यह देव-दुर्लभ सम्मान प्राप्त करके भी श्री सारदा देवी सम्पूर्ण निरभिमानिनी थीं, इसी से उनकी आध्यातिमक शक्ति की गहराई जानी जाती है। श्री रामकृष्ण की भाँति वे भी स्थूल शरीर का परित्याग कर सूक्ष्म शरीर में विद्यमान हैं, यह बात समझने में देरी न होगी। श्री रामकृष्ण के द्वारा जीवोद्धार का कार्य सम्पूर्ण करने के लिए उन्होंने अपने पति देवता के अन्तर्धान के पश्चात् दीर्घकाल तक स्वेच्छा से माया बन्धन ग्रहण कर धराधाम में अवस्थान किया। धर्म जगत के इतिहास में इसकी तुलना नहीं।

# प्रश्नोत्तर

—स्वामी माधवानन्द

(२३ मार्च सन् १९६४ ई० को पूज्यपाद स्वामी माधवानन्द जी महाराज दिल्ली पधारे थे। उस समय अनेक शिष्यों एवं भक्तों ने उनसे प्रश्नादि किये थे जिनका उत्तर महाराज जी ने दिया था। उन में से कुछ उत्तरों को वहां उनके एक ब्रह्मचारी शिष्य ने लिपिबद्ध किया था।)

### प्रार्थना

हम साधारणतया सामयिक इन्द्रिय तृप्ति के लिए, तुच्छ नश्वर वस्तु लाभ के लिए प्रार्थना करते हैं, किन्तु हमें सर्वश्रेष्ठ वस्तु (ईश्वर) लाभ के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। श्री श्री रामकृष्ण कथामृत (हिन्दी में वचनामृत) पढ़ो। नित्य कुछ-नियमितरूप से पढ़ने का अभ्यास करो। श्रीरामकृष्णदेव ने कहा था, "मैं अपना कार्य करता जाऊँगा, बाकी सब ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है।"

### जप-ध्यान

जप करते समय मन में इष्ट-देवता अथवा इष्ट-मूर्ति का ध्यान करना। ध्यान करना खूब कठिन है इसीलिए पहले जप करना चाहिए।

प्रश्न : महाराज! ध्यान करने के समय जब श्वास-प्रश्वास सूक्ष्म हो जाता है, और इष्टमूर्ति उज्ज्वल हो उठती है तब बहुत आनन्द होता है। किन्तु मन उस आनन्द का ही भोग करने लगता है और इष्ट चिन्ता छूट जाती है। इसका क्या उपाय?

उत्तर : आनन्द भोग का त्यागकर पुनः मन को इष्ट-चिन्तन में नियुक्त करना चाहिए। कुछ दिन अभ्यास करने पर सब ठीक हो जाएगा।

प्रश्न : महाराज! ध्यान के समय यदि अन्य देवता की मूर्ति आये तो क्या करणीय है?

महाराज : साधारणतया कौन देवता की मूर्ति आती है?

प्रश्नकर्त्ता : अमुक एवं अमुक।

उत्तर : ऐसा मानो कि ये देवमूर्तियाँ तुम्हारे इष्ट देवता के अतिरिक्त और कोई भी नहीं हैं। इन देवताओं में अपने इष्ट देवता का ही ध्यान करना। देखोगे, सब सरल हो जाएगा।

प्रश्न : कभी-कभी ध्यान खूब जम जाता है और अन्य समय एकदम ही मन एकाग्र नहीं हो पाता?

उत्तर : हाँ! ध्यान सब समय नहीं जमता। ध्यान करना खूब कठिन है। किन्तु अभ्यास के द्वारा ध्यान दीर्घकालीन एवं गहरा होता है। देखो, एक चित्रकार चित्र आंकने के लिए क्या करता है? जो छवि आंकनी है पहले उसे बहुत देर तक देखता है। फिर थोड़ा आंकता है और मूल छवि को बार बार देखता है। जब चित्र तैयार हो गया तब उसी पर अधिक दृष्टि रखता है और अन्त में मूल छवि देखने की आवश्यकता ही नहीं रहती। ठीक उसी प्रकार इष्ट मूर्ति को अपने हृदय में चित्रित करना

है। पहले बाहर इष्ट देवता की छवि सामने रखकर उसे देखो और साथ-साथ जप करो। फिर उसे अपने हृदय में आँकने की चेष्टा करो। जब हृदय में इष्ट-मूर्ति चित्रित हो जाए तब और आँख खोलकर बाहर देखने की आवश्यकता न रहेगी। हृदय में इष्ट-मूर्ति देखना ही यथार्थ ध्यान है।

**प्रश्न :** मैं साधारणतः कर्म को पूजा ही मानता हूँ तब भी बीच-बीच में सन्देह होता है कि कर्म करने से ईश्वर लाभ होगा कि नहीं ?

**उत्तर :** पूर्वकाल में धारणा थी कि एकान्तवास, ध्यान तपस्या द्वारा ही ईश्वर की प्राप्ति होती है, किन्तु अब स्वामी विवेकानन्दजी ने जीव में शिव की सेवा का मन्त्र दिया है। 'जीव ही शिव है—दरिद्र, मूर्ख, पददलित में शिव देखो' यही नया पथ है। यदि तुम इस भाव में अनुप्राणित होकर उनकी सेवा करो, यहाँ तक कि तुम्हारा हाथ-पाँव हिलाना भी यदि इस भाव में अनुप्राणित होकर किया जाए तब सब पूजा ही हो जाएगा। यदि इस भाव पर दृढ़ विश्वास हो तब निश्चय ही कर्म के द्वारा ईश्वर प्राप्ति होगी।

**प्रश्न :** साधु जीवन में क्या-क्या विघ्न हैं ? और उनसे कैसे मुक्ति मिले ?

**उत्तर :** अहंकार एवं इन्द्रियतृप्ति ही प्रधान विघ्न हैं। इन्द्रियतृप्ति या इन्द्रिय सुख से तात्पर्य विशेषकर काम भाव है। यह भाव नहीं आना चाहिए। प्रार्थना एवं विवेक-विचार द्वारा ये विघ्न दूर होते हैं। प्रार्थना से बल प्राप्त होता है और विघ्नकारी विचारों से रक्षा होती है। मन में यह विवेक-विचार करना कि अब तुम साधु हुए हो तो इन्द्रिय सुख में प्रवाहित क्यों होगे, तुम्हें तो इन्द्रियातीत अवस्था प्राप्त करनी है।

●

# एक रोचक संस्मरण

**ब्रह्मलीन स्वामी निरामयानन्द**

("Blessed Days of Association with a Saint" by A devoted Admirer पुस्तक में प्रकाशित "An Interesting Anecdote से अनुवादित।)

सन् १९३५ ई० की बात है। कलकत्ता में श्री रामकृष्ण जन्म शताब्दी के उपलक्ष में १९३६ ई० के आरम्भ से एक वर्ष लम्बा उत्सव मनाने की तैयारियाँ हो रही थीं। विचारों के प्रवाह में एक दिन साँझ के समय मैं उद्बोधन गृह में जा पहुँचा। स्वामी अरूपानन्द जी (पू० रास बिहारी महाराज), जो एक समय श्री माँ सारदा देवी के विश्वस्त सेवक थे, वाराणसी से आये हुए थे। उन्हें लेकर, संध्या के बाद, मुझे चक्षु-विशेषज्ञ के पास जाना था। स्वामी माधवानन्द जी (पू०

निर्मल महाराज ), जो उस समय रामकृष्ण मठ व रामकृष्ण मिशन के सह-सचिव थे, अपने हाथ में में एक फाईल एवं कागजों का पुलिन्दा लेकर पहुँचे।

शीघ्रता से ऊपर ( ठाकुर-गृह ) में जाकर प्रणाम आदि करके गोधूलि के समय वे बाहर जाने वाले ही थे कि रास बिहारी महाराज भी मुझे बुलाते हुए उनके पीछे चल दिये। बागबाजार स्ट्रीट पहुँचने पर दोनों स्वामी जी में वार्तालाप होने लगा।

"भाई निर्मल ! कागज और फाईल लेकर इस समय कहाँ जा रहे हो ?"

"भाई ! बेलुड़ मठ के पश्चिम वाली-जमीन दखल करने के सम्बन्ध में वकील की राय लेने के लिए उसके घर जा रहा हूँ।"

कुछ समय खामोश रहने के बाद रासविहारी महाराज ने गम्भीर स्वरों में कहा, "अच्छा, भाई जब हमने आकर संघ में योगदान किया था तब हमने क्या देखा था ? और अब जो आ रहे हैं, वे क्या देखते हैं ?

निर्मल महाराज की तीक्ष्ण बुद्धि से तैयार उत्तर निकला, "प्रत्येक अपने भाग्यानुसार देखता है।" रासविहारी महाराज कुछ चिन्ताग्रस्त से साथ-साथ चलते हुए कहने लगे, "हमलोग जब आये तो हमने जप-ध्यान, आध्यात्मिक साधना भजन इत्यादि देखे थे—क्या आपको वह सब याद नहीं ?"

"उन्हें कैसे भूल सकता हूँ ? उसी वेग से तो मैं अपनी गाड़ी चला पा रहा हूँ।"

"और अब आने वाले लड़के क्या देखते हैं ? मेज, कुर्सी, टाईप-राईटर, हिसाब-पत्र एवं फाईल। उनकी आध्यात्मिक उन्नति कैसे होगी ?"

"प्रिय भाई। तब तो मुझे भी यह कहना है कि वे ही उनका मार्ग प्रदर्शन करेंगे, जो उन्हें लाये है। हम तो कभी भी उन्हें हमें देखने और हमसे सीखने के लिए नहीं कहते हैं। हम जिनके पास आये थे, उनके जवन आदर्श से अधिकाधिक सीखने की हमने चेष्टा की थी। उन्हीं लोगों ने सार रूप में हमें श्री श्री ठाकुर और स्वामी जी का कार्य करने का उपदेश किया था। उनके विशद उपदेश पर विवेचना करने के बाद ही हम कार्य में जोर-शोर से जुट गये। मैं जानता हूँ वे हमारे साथ हैं, वे हमें देख रहे हैं और देखते रहेंगे।"

"अब इन लड़कों का क्या होगा ? इन लोगों ने तो न उनका ध्यान-जप या आध्यात्मिक साधना ही देखी है और न ही उन लोगों के द्वारा कार्य-भार ग्रहण करने की सर्वोच्च क्षमता ही प्राप्त की है। लगातार कर्म करते रहने से अन्त में इनकी क्या गति होगी ?"

"प्रिय भाई ! क्या इन युवकों को हम जाकर लाये हैं। ये लोग तो ठाकुर स्वामी जी की पुस्तकें पढ़कर, उनकी वाणी का अध्ययन करके केवल उन्हीं के द्वारा आकर्षित होकर उन्हीं के आदर्श के प्रति भक्ति सम्पन्न होकर उनके कार्य के लिए अपना जीवन न्योछावर करने आये हैं। ये लोग क्या कम भाग्यशाली हैं ? उनका विश्वास ही उन्हें आगे बढ़ाएगा उन्हें हम लोगों से सीखने की आवश्यकता नहीं।"

दोनों ही गम्भीर भाव से चले जा रहे थे। चारों ओर खामोशी छायी हुई थी। कुछ देर बाद निर्मल महाराज ने खामोशी भङ्ग करते हुए कहा, "प्रिय भाई। गंगोत्री, ऋषिकेश और हरिद्वार में गंगा बड़ी ही निर्मल है किन्तु दक्षिणेश्वर एवं बेलुड़ में वही गंगा जल गंदला है, और उस पर क्या नहीं तैरता। इसका अर्थ निश्चित रूप से यह कभी नहीं

कि उससे उसकी पवित्रीकरण शक्ति का ह्रास हुआ है।

अब हम शाम बाजार के मोड़ पर पहुँच गये थे। निर्मल महाराज शीघ्र ही खड़ी हुई बस में चढ़ गये और रासबिहारी महाराज को हाथ हिलाकर विदा दी।

हम दोनों चक्षुविशेषज्ञ के घर की ओर बढ़े।

कुछ क्षणों के बाद मेरी ओर मुड़कर रासबिहारी महाराज ने कहा, सो तुमने हमारी सब बातें सुनी हैं न? क्या तुमने उनकी तीक्ष्ण एवं सरस बुद्धिमत्ता को लक्ष्य किया? बेलुड़ में गंगा इतनी निर्मल नहीं है जितनी हरिद्वार और ऋषिकेश में, किन्तु उससे उसकी पवित्रीकरण शक्ति कदापि कम नहीं हुई।

●

# शिष्ट व्यक्ति स्वामी माधवानन्द

— स्वामी लोकेश्वरानन्द
सचिव
रामकृष्ण मिशन इन्सटिट्यूट ऑफ कल्चर
कलकत्ता।

स्वामी माधवानन्दजी को अल्पसंख्यक लोग ही जानते थे। किन्तु जो जानते थे वे सर्वदा उन्हें श्रद्धा एवं कृतज्ञता की दृष्टि से देखते थे क्योंकि वे किसी के मन में यह हीन भावना न उठने देते थे कि वह बुद्धू और निकम्मा है। ऐसा अनुभव कराने के लिए वे कोई वक्तृता नहीं करते थे बल्कि अपने व्यवहार और श्रद्धा की भावना से दूसरों को यह महसूस करा देते थे कि वह भी अपने लिए एवं संसार के लिए महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। वे सब के भीतर आत्मश्रद्धा बढ़ा देते थे, उनके अच्छे गुणों के बारे में सचेतन कर देते थे और उनके द्वारा किये गये कार्यों को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बता कर कर्तव्यबोध इतना बढ़ा देते थे कि कोई व्यक्ति अपने में सुधार लाने के लिए जी जान से लग जाता था। उनके साथ कुछ समय व्यतीत करने पर ऐसा दृढ़ विश्वास होने लगता था कि भरसक चेष्टा करने पर हम भी कठिन से कठिन कार्यों को करने में सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

तब भी उनसे बातचीत करना इतना सरल न था। यदि कोई नवीन संन्यासी उनसे बातचीत करने जाता तो उसे अपने विचारों को बड़ी सावधानी के साथ सजा लेना होता था एवं बोलने के समय उचित स्थान में उचित शब्दों का प्रयोग करना होता था क्यों कि यदि किसी का वक्तव्य या प्रश्न अस्पष्ट या अप्रासङ्गिक होता तो उन्हें लगता कि वह व्यक्ति अपना एवं उनका समय नष्ट कर रहा है। वे चाहते थे कि हम जो कुछ भी कहें वह कम से कम शब्दों में, स्पष्ट एवं प्रासङ्गिक हो तथा एक ही बात को बार-बार न दोहराएं। वे मानसिक अनुशासन में विश्वास करते थे, उस मानसिक अनुशासन में जिससे स्पष्ट विचार और स्पष्ट भावों का उदय हो। वे प्रत्येक शब्द को बड़े ध्यानपूर्वक सुनते किसी शब्द के अनुचित उच्चारण या व्यवहार होने पर, अप्रासङ्गिक या अनावश्यक होने पर वे हमारे मन को ठेस न पहुँचाते हुए भूल संशोधन करने में न हिचकिचाते थे।

अत्यन्त गूढ़ दार्शनिक धारणाओं वाले ग्रंथ का संस्कृत से अंगरेजी में भाषान्तर करने की कठिनाइयों के बारे में अभिज्ञता प्राप्त विद्वानों के विचार में स्वामी माधवानन्द जी द्वारा बृहदारण्यक उपनिषद् के शंकर भाष्य का अनुवाद एक श्रेष्ठकृति है। यह केवल उनकी विद्वत्ता या विषय वस्तु सम्बन्धी दक्षता का ही नहीं अपितु निर्भूलता के लिए कठिन परिश्रम एवं सावधानी का भी उदाहरण था। इससे पहले एवं बाद में किये गये इस महान उपनिषद् के अनुवाद ग्रन्थों में यह पुस्तक अतुलनीय है एवं विद्वत् जगत इसके लिए चिरकृतज्ञ रहेगा।

स्वामी माधवानन्द जी ने इस प्रकार के कुछ अन्य ग्रन्थों का भी अनुवाद किया है। यह एक विरल संयोग मात्र ही है कि उनकी प्रत्येक पुस्तक उनकी विद्वत्ता और यथार्थता का परिचय देती है। इसका कारण यह है कि वे निर्भूलता पर इतना जोर देते थे कि इसके लिए वे सब कुछ करने को तैयार थे। सम्भवतः इसीलिए वे अधिक मात्रा में साहित्य न लिख सके।·· उन्होंने अपने नाम से या छद्मनाम से बहुत लेख लिखे थे। उनके सभी लेखों में हम उनके तीक्ष्ण स्पष्ट, संक्षिप्त एवं सरल व्यक्तित्व का ही परिचय पाते हैं। उनके लेखों में न तो ऐसा कुछ रह जाता था और न ही ऐसा कुछ लिखा होता था, जो अनावश्यक था। वे संक्षिप्त होते हुए भी सम्पूर्ण थे, तथा सूचनापूर्ण होते हुए भी अधिक विवरणों से लदे हुए न थे, विद्वत्तापूर्ण होते हुए भी पाठकों के लिए सर्वदा रोचक एवं मनोहर होते थे।

पुस्तकें एवं लेख स्वयं लिखने के अतिरिक्त उन्होंने दूसरों द्वारा लिखित बहुत सी पुस्तकों का सम्पादन किया था। उनके जीवन के शेष तीन वर्षों में सम्भवतः रामकृष्ण मिशन द्वारा प्रकाशित कोई भी पुस्तक नहीं जिसकी पाण्डुलिपि उन्होंने न पढ़ी हो, उसकी विषय वस्तु एवं भाषा को समालोचना दृष्टि से न देखा हो एवं सुधार लाने में सहायता न की हो। उनकी महासमाधि के कुछ समय पूर्व ही सन् १९६५ ई० में प्रकाशित श्री रामकृष्ण देव पर क्रिस्टोफर ईशरउड की पुस्तक भी इसका अपवाद नहीं है। क्योंकि ईशरउड ने पुस्तक के प्राक्कथन में लिखा है कि प्रेस में भेजने से पहले उन्होंने पुस्तक के प्रत्येक अध्याय महाराज जी से परीक्षण करा लिये थे। पुस्तक में दी गयी प्रकृत घटनाओं व तथ्यों की निर्भूलता के बारे में निश्चित होने के लिए ही ईशरउड ने ऐसा किया था क्यों कि वे जानते थे कि इस कार्य के लिए महाराज श्रेष्ठतम व्यक्ति हैं।

स्वामी माधवानन्द जी का यह निष्कपट विश्वास था कि यथार्थ भावना से कर्म करने पर वह पूजा हो जाता है। ईश्वर सेवा के लिए किया गया कोई भी कार्य उनके लिए तुच्छ न था। उन्हें प्रायः प्रूफ देखने का कार्य करते देखा जाता था, जिसे कम लोग ही करना पसंद करते हैं। किन्तु उसी कार्य को वे इस प्रकार करते थे कि सभी यही सोचते थे कि उस कार्य में उनकी खूब रुचि है। सत्यता यह है कि वे जानते थे कि यह कार्य दूसरों को पसन्द नहीं है और उन्हें यह कार्य सौंपा जाए तो उनके द्वारा आग्रह हीन भाव से कार्य सम्पन्न होने की सम्भावना है। इसीलिए मिशन के मुख्य कार्यवाहक होने के नाते अत्यन्त व्यस्त रहने के बावजूद वे इस क्लान्तिजनक कार्य को किसी और से न कराकर प्रायः स्वयं ही करते थे। सभी के द्वारा अपसन्द इस कार्य को वे अत्यन्त निष्ठा के साथ करते थे। प्रूफ देखने के कार्य में वे इतने निपुण हो गये थे कि उनके एक बार देख लेने के बाद उसमें कोई भूल निकलना असम्भव था। यह बड़ी आकर्षणीय बात है कि कभी-कभी वे प्रूफ देखने जैसा क्लान्तिजनक

कार्य खाने के बाद करते थे और कोई यदि उन्हें यह कहता कि खाना अच्छी तरह पचाने के लिए उन्हें खाने के बाद यह श्रमसाध्य नीरस कार्य न करके विश्राम करना चाहिए तो वे कहते थे, "मैं तो विश्राम ही कर रहा हूँ। विश्राम लेने का अर्थ कुछ न करना नहीं है, इसका अर्थ है काम बदलना (change of occupation)"

दूसरे के प्रति सम्मान की भावना, स्वामी माधवानजी की प्रमुख विशेषता थी जिसके कारण सभी के लिए वे एक आकर्षणीय व्यक्ति माने जाते थे। अत्यन्त गर्मी न पड़ने तक अपने लिए पंखा चलाना उनकी दृष्टि में विलासिता थी। इसलिए वे अपने लिए पंखा न चलाते थे। किन्तु गर्मी के दिनों में यदि कोई व्यक्ति उनसे मिलने आता तो उसके लिए वे तुरन्त पंखा चला देते थे।

यदि किसी कारणवश उन्हें भोजन करने के लिए विलम्ब हो जाता तो वे उनका भोजन किसी स्थान में रख देने का समाचार भेज देते जिससे कार्य समाप्त होने पर वे स्वयं लेकर खा सकें। वे न चाहते थे कि उन्हें भोजन कराने के लिए कोई उनकी प्रतीक्षा करे या उनका भोजन उनके कमरे में लाकर रख दे। सारांश में कहें तो उनकी आयु अथवा पदवी के कारण कोई उन्हें सम्मान दिखाए, यह उन्हें एकदम पसन्द न था और यदि कोई ऐसा कर बैठता तो वे अत्यन्त नाराज हो जाते थे। एक दिन उनकी इच्छा के विरुद्ध इस प्रकार उनका भोजन लाये जाने पर उन्होंने भोजन ही नहीं किया।

एक बार वे और उनके भाई (स्वामी दयानन्दजी) अपने रुग्ण माता-पिता को देखने गये। उन्होंने सोचा था शाम को ही पहुँच जाएँगे। परन्तु गाड़ी देरी से पहुँचने के कारण रात हो गयी तब तक उनके माता-पिता एवं घर के अन्य सभी व्यक्ति सो चुके थे। किसी को कष्ट न देकर दोनों भाइयों ने बिना खाए-पिए सारी रात जागकर ही बाहर काट दी।

स्वामी माधवानन्द जी स्वभाव से सरल, तितिक्षु और मितव्ययी थे। अनावश्यक वस्तुओं को वे कभी भी स्वीकार न करते थे। रामकृष्ण मठ व मिशन के संघगुरु पद पर आसीन होने के पश्चात जब वे रंगून गये तो अपने साथ केवल एक छोटा हवाई बैग ले गये थे। जब किसी व्यक्ति ने इस पर आश्चर्य प्रकट किया तो उन्होंने कहा कि उन्हें जिन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, उन सभी वस्तुओं को वे उस बैग में भर सके हैं।

रंगून में देखा गया कि महाराज जी एक पुरानी फटी चप्पल पहने रहते थे। किसी सज्जन ने उन्हें एक जोड़ी नई चप्पल स्वीकार करने के लिए अनुरोध किया पर वे राजी न हुए। उन व्यक्ति ने सोचा कि यदि पुरानी चप्पल हटाकर नयी रख दी जाए तो शायद वे स्वीकार कर ही लेंगे। और उन्होंने ऐसा ही किया किन्तु देखा गया कि महाराज जी खाली पाँव ही चलने के लिए प्रस्तुत हो गये। अब उस भक्त के पास और कोई चारा न था। तुरन्त महाराज जी की पुरानी चप्पल यथास्थान पर रख दी।

स्वामी माधवानन्द जी किसी भी व्यक्ति से कुछ भी सेवा लेना पसन्द न करते थे। एक बार उनके दाढ़ी बनाने के बाद एक नवीन संन्यासी ने दाढ़ी बनाने का सामान धोकर रख देने की इच्छा प्रकट की तो महाराज जी तिरस्कार करते हुए बोले, "इसकी जगह तुम मंदिर में जाकर प्रार्थना क्यों नहीं करते?" दूसरे अवसर पर जब वे एक हॉल में गये जहाँ जूते ले जाना मना था, तब वही नवीन संन्यासी उनके जूते की देख रेख करता रहा और उनके बाहर आने पर उसने जूते उनके चरणों

के पास रख दिये। यद्यपि इस कार्य की सेवा में गणना नहीं की जा सकती किन्तु स्वामी माधवानन्द जी नहीं चाहते थे कि कोई उनके लिए इतनी भी सेवा करे और उन्होंने उस नवीन संन्यासी को उनके जूतों की चिन्ता करने के लिए डाँटा।

अन्तिम दिन तक स्वामी माधवानन्द जी ने बड़ी दृढ़ता के साथ नित्य साधन-भजन एवं शास्त्र अध्ययन का अभ्यास बनाए रखा था। अन्तिम समय में रुग्णावस्था के कारण अधिक समय तक बैठकर जप-ध्यान करना तो दूर की बात, कुछ समय बैठना भी कठिन हो गया था। उस अवस्था में भी वे बिछौने पर लेटे-लेटे ही जप करते थे। इस प्रकार जप करने के समय का उनका एक फोटो भी है। नित्य कार्य-क्रमों में विशेषकर ध्यान-जप इत्यादि में उनकी समयनिष्ठता अन्य साधुओं के लिए अति सराहनीय एवं अनुकरणीय थी। अधिकांश साधुगण यह देखकर दंग रह जाते और भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे कि वे नित्य प्रातः चार बजे से साढ़े चार के बीच में शैय्या परित्याग कर जप ध्यान करते थे। विशेष परिस्थितियों के कारण कभी-कभी सोने में अधिक रात्रि होने पर भी वे इस अभ्यास में कभी ढील न देते थे। संध्या समय भी मंदिर में आरती समाप्त होने के तुरन्त बाद ही वे (अपने कमरे में) ध्यान करने बैठ जाते थे। इसीलिए यदि किसी को कोई आवश्यक कार्य होता था तो वह आरती समाप्त होने से पहले ही उनसे मिल लेता था।

किन्तु उनके इस प्रकार नियमित रूप से ध्यानादि के कारण उनके सुलभ न होने से मिशन का कोई महत्त्वपूर्ण कार्य अटक जाए, यह स्वामी माधवानन्द जी को पसन्द न था। एक बार कलकत्ता के एक केन्द्र से एक नवीन संन्यासी कुछ आवश्यक पत्रों पर उनके हस्ताक्षर लेने के लिए गया। किन्तु जैसे ही वे मठ में पहुँचे उन्हें यह देखकर बड़ी निराशा हुई कि स्वामी माधवानन्द जी ने तब ही जप-ध्यान करने के निमित्त अपने कमरे की बत्ती बुझा दी। परिणाम यह हुआ कि दो घन्टे तक वह संन्यासी उनसे न मिल सके। रात को जब वे स्वामी माधवानन्द जी से मिले तो हस्ताक्षर कराने के लिए तत्क्षणात दरवाजा न खटखटाने या उनकी दृष्टि आकर्षण न करने के लिए महाराज जी ने उन संन्यासी को डाँटा और कहा कि उनके प्रति यह सम्मान दिखाकर उन संन्यासी ने अनजाने में ही मिशन के कार्य में एक अस्थायी बाधा उपस्थित कर दी थी। उनके विचार में यह एक त्रुटि थी। संघ के कार्य के सामने और किसी भी कार्य को प्रधानता नहीं मिलनी चाहिए।

इसका अर्थ यह नहीं कि स्वामी माधवानन्द जी जप-ध्यान को महत्त्व नहीं देते थे बल्कि निष्काम योगी होने के कारण वे संघ के हित में अपने हित का त्याग करना पसंद करते थे।

# स्मृति-अर्घ्य

—स्वामी अच्युतानन्द
रामकृष्ण मिशन, बेलुड़ मठ

"यह क्या किया ? मेरे लिये भाड़े पर टैक्सो क्यों की ? यहाँ से आश्रम बहुत ही निकट है, मैं तो रिक्शा में जा सकता था।"

"नहीं महाराज ! यह तो एक भक्त की गाड़ी है। वे लाये हैं, आपको आश्रम पहुँचा देंगे।"

"अरे छि: छि:—फिर भक्त को कष्ट देकर गाड़ी लाये हो। नहीं ! नहीं ! यह अच्छा नहीं हुआ।"

इस बीच में जिनकी गाड़ी थी उन सज्जन ने आगे बढ़कर प्रणाम करके कहा, 'नहीं महाराज ! उन्होंने गाड़ी लाने के लिए नहीं कहा, मैं अपने आप ही ले आया हूँ। इस तरफ मेरा कुछ काम था, वह कर चुका हूँ। अब आपको आश्रम पहुँचाकर लौट जाऊँगा।"

महाराज निश्चिन्त मन से गाड़ी में बैठे। उनके साथ दरी में लिपटा एवं रस्सी से बंधा एक छोटा विस्तरा और एक कनवैस का थैला था, जिन्हें गाड़ी की डिग्गी में रखकर गाड़ी स्टेशन से आश्रम की ओर चलने लगी।

इस दृश्य के प्रधान वक्ता थे रामकृष्ण मठ व रामकृष्ण मिशन के तत्कालीन साधारण सचिव (General Seoretary) पूजनीय स्वामी माधवानन्द जी महार.ज। बेलुड़ मठ लौटने के रास्ते में वे एक आश्रम में आये हैं। रेल के द्वितीय श्रेणी के डिब्बे से उतरकर, मोटरगाड़ी लायी गयी है, ऐसा सुनकर विस्मित हो उस आश्रम के अध्यक्ष स्वामीजी के प्रति उन्होंने यह मन्तव्य रखा था इस छोटी सी घटना से महाराज जी के आडम्बरहीन जीवन एवं संन्यासी सुलभ अपरिग्रही मनोभाव का परिचय पाते हैं। उसे स्मरण कर वे लोग अवश्य ही सुखी होंगे जिन्होंने उन्हें अत्यन्त निकट से देखा है।

आश्रम में पहुँचकर हाथ-मुख धोकर सबसे पहले वे ठाकुर-दर्शन के लिये गये। अत्यन्त आकुल होकर हाथ जोड़कर ठाकुर के समान खड़े-खड़े विनम्र भाव से प्रणाम करके वे अपने कमरे के सामने लौट आये और एक कुर्सी पर विराजमान हुए। सबने एक-एक करके उन्हें प्रणाम किया। प्रणाम के बाद ही अचानक उन्होंने आश्रम अध्यक्ष से प्रश्न किया, "अच्छा ! तुम्हारे यहाँ से एक लड़का किसी को कुछ न बताकर भाग गया। समाचार में खोये हुए व्यक्तियों के कॉलम में (column) मैंने सका फोटो देखा था, क्या बात है बोलो तो ? उत्तर में आश्रमाध्यक्ष ने बताया, "हाँ महाराज ! छात्रावास में एक लड़का बहुत शैतानी करता था। उसे एक शिक्षक ने थोड़ा धमकाया था इसी से वह किसी को कुछ न कह कर चला गया। हम सभी बहुत उद्विग्न हैं। चारों ओर उसकी खोज की गयी है। अभी तक कोई खबर नहीं मिली।" पूजनीय महाराज ने समाचार पत्र में यह खबर देखी थी एवं याद करके अब उस लड़के के बारे में पूछने पर उपस्थित सभी व्यक्ति अवाक रह गये। पूजनीय महाराज ने पुनः पूछा, 'अच्छा मास्टर ने ऐसा क्या किया था कि लड़का भाग ही गया ?' अध्यक्ष महाराज स्वयं और कुछ

न बोलकर सामने ही खड़े हुए एक युवक की ओर ऊंगली से इशारा करते हुए बोले, 'इसी से पूछिए महाराज, यही वह मास्टर है।"

पूजनीय महाराज की विस्मित दृष्टि उस युवक की ओर निबद्ध हुई तो वह लज्जा और संकोच से अत्यन्त विह्वल हो उठा। वह मुख भी न उठा पा रहा था। एक तो लड़के के चले जाने से नैतिक दायित्व का बोझ हटा नहीं पा रहा और और उस पर वरेण्य संन्यासी एवं संघ के सर्वोच्च कर्ताधर्ता को क्या उत्तर दे, इसी चिन्ता से वह मरा जा रहा था। सम्भवत: उसकी ऐसी अवस्था देखकर ही पूज्यपाद महाराज ने कहा, "ओ! तुम हो वह मास्टर हो। ऐसी मार लगायी कि लड़का भाग ही गया। शैतान लड़का था न? जाएगा कहाँ? लौट आएगा। कुछ दिन इधर उधर घूम फिर कर लौट आएगा। किन्तु देखो। मास्टर होने का अर्थ बेरोक-टोक मार लगाना नहीं है। केवल दण्ड न देकर यदि उसे समझा बुझाकर उसको शैतानी के रास्ते से भले रास्ते पर लाते तब न तुम ठीक ठीक मास्टर होते। क्यों! ठीक है न? तुम्हारी शिक्षा मनस्तत्व है न, "Simpathy is the key word." यही सहानुभूति और प्रेम मनुष्य की जीवनधारा बदल देता है, केवल निर्मम शासन नहीं। जो हो चिन्ता न करो, वह ठीक लौट आएगा।" नवीन शिक्षक महाराज जी को प्रणाम् कर धीरे-धीरे चला गया। बाहर निकल कर खड़े होने पर उसने सुना महाराज जी कह रहे थे, "आजकल छात्रगण भी वैसे ही हैं। लिखने पढ़ने का नाम नहीं—Adventure करने के लिए भाग गया। अभिभावक गण भी अपने लड़कों को तो सम्भाल नहीं सकते हमारे पास लाकर कहते हैं, 'महाराज इन लोगों को मनुष्य बना दीजिए।' अरे! घर से जो सीखकर आता है—उसे क्या इतने सहज में सुधारा जा सकता है। जो हो अब ठाकुर की कृपा से लड़का लौट आए तो सब प्रकार से रक्षा हो।"

उस दिन रात को पुन: वही शिक्षक पूजनीय महाराज को प्रणाम् करने के लिए गया तो उन्होंने फिर कहा, "मास्टरी करना बहुत कठिन काम है, जानते हो? तुम्हारा प्रत्येक चाल-चलन छात्रगण देखेंगे, सुनेंगे और उसका अनुसरण करेंगे। इसलिए खूब सावधान रहना। यहाँ के अध्यक्ष से सुना है कि तुम अच्छा ही पढ़ाते हो और तुम्हारी आयु अल्प होने पर भी लड़के तुम्हें मानते हैं। इसीलिए एक लड़के के भाग जाने पर भी स्कूलके अन्य लड़कों ने इस विषय में झमेला नहीं किया। जो हो, फिर कभी इतना कठोर दण्ड न देना।

इस प्रसंग में उन्होंने फिर कहा, "पढ़ाई लिखाई के बारे में यदि छोटी उम्र से ही किसी को कहा जाए कि उसके द्वारा कुछ सम्भव नहीं तो उसके भीतर शक्ति का विकास नहीं होगा। इसलिए तुम्हारे भीतर क्या है अथवा तुम्हारे द्वारा ठाकुर क्या महान कार्य कराएंगे, वह तो तुम भी नहीं जानते और मैं भी न कह सकूंगा।" इस प्रकार उस दिन उन्होंने बहुत सी बातें कहीं। दूसरे दिन ही वे बेलुड़ मठ लौट गये। आश्चर्य की बात है कि उनकी अमोघ इच्छा से वही लड़का दो दिन के बाद लौट आया। वह पास में ही एक सज्जन के घर जाकर छिप गया था। उन्हीं सज्जन ने समाचारपत्र में उसका चित्र देखकर, लड़के को कुछ न बताकर आश्रम में खबर दी थी। साधुगण जाकर लड़के को ले आए। तार द्वारा मठ में महाराज जी को लड़के के लौट आने की खबर देने पर वे बहुत आनन्दित हुए।

इसके बाद कुछ वर्ष बीतने पर उसी युवक ने अपने कर्मस्थल उसी आश्रम को परित्याग कर साधु होने के लिए मठ के एक अन्य शाखा केन्द्र में योगदान किया। पूजनीय विशुद्धानन्दजी की

महासमाधि के उपरान्त अब पूजनीय माधवानन्द जी संघनायक थे। नवीन ब्रह्मचारी विश्वविद्यालय की अन्तिम परीक्षा असमाप्त छोड़कर चले आने पर जिस आश्रम में उसने योगदान किया था उस आश्रम के सचिव एवं संलग्न महाविद्यालय के प्रधान स्वामीजी क्षुब्ध हुए। एक दिन उन्होंने नये ब्रह्मचारी को प्रेसीडेन्ट महाराज के सामने हाजिर कर दिया। शायद उनके कहने से ब्रह्मचारी अधूरी परीक्षा समाप्त कर आये। पूज्यपाद महाराज तब दोनों चरण एक मोड़े पर रखे एक कैनवैस की आरामकुर्सी पर बैठे श्री श्री रामकृष्ण कथामृत (वचनामृत) पढ़ रहे थे। दोनों प्राचीन स्वामीजी आगे जाकर महाराज जी से ब्रह्मचारी के सम्बन्ध में बातचीत कर उसे भी भीतर बुला लाये। ब्रह्मचारी ने भीतर जाकर महाराज जी को प्रणाम् कर उनकी ओर ताका। महाराज जी ने हठात् मुस्कराते हुए कहा, "अरे ! तुम कहाँ से आये ? इस बार शायद तुम्हीं पढ़ने के भय से भागकर आ गये हो और ये लोग तुम्हें धमकाकर फिर से पढ़ने के लिए बिठाना चाहते हैं।" साथ में आये हुए दोनों स्वामीजी इस रहस्य को न जानकर अवाक रह गये तब महाराज जी ने स्वयं उन्हें पुरानी घटना बताकर ब्रह्मचारी से कहा, "परीक्षा दे ही दो न, हम लोगों के बड़े हो काम की होगी। परीक्षा में बैठने की क्या तुम्हारी इच्छा नहीं ? नीरव ब्रह्मचारी ने महाराज जी की स्मृति शक्ति की बात स्मरण करते हुए उनके मुख की ओर देखा तो वे पुनः बोल उठे, "परीक्षा नहीं दोगे ?" संकुचित भाव से ब्रह्मचारी ने जब अपनी परीक्षा देने की अनिच्छा प्रकट की तो उन्होंने फिर कहा, "पास न होने का भय है न ? उसके उत्तर में आश्रमाध्यक्ष स्वामीजी ने कहा, "नहीं महाराज ! उसका इस विषय में Honours का फल अच्छा हुआ है और परीक्षा देने से अच्छे नम्बरों से ही पास करेगा। उसके अध्यापकों का भी यही मत है। ऐसा सुनकर महाराज जी ने कारण जानना चाहा। तब ब्रह्मचारी का उत्तर सुनकर महाराज जी ने अपना मत बदल दिया और कहा, "उसे छोड़ दो। उसकी जब इच्छा नहीं तो उसे कष्ट क्यों दे रहे हो। मैंने भी बाबूराम महाराज के insist करने के बावजूद परीक्षा नहीं दी।

इसके बाद काज कर्म से अवसर पाने पर ब्रह्मचारी बीच-बीच में महाराज के पास आता रहा। महाराज के प्रधान सेवक से घनिष्ठता होने के कारण शाम को दर्शनों के समय दूर खड़े होकर बहुत से प्रसंग सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था।

उसी समय एक बार महाराज जी के दर्शनार्थ एक दल कालिज के छात्र आये। उनमें दो एक जन महाराज जी के दीक्षित सदस्य थे। उनमें से एक ने प्रश्न किया, "जप-ध्यान क्या निर्दिष्ट समय पर ही करना होगा ? उनके उत्तर में महाराज ने कहा, "हाँ एक fixed time में करना ही अच्छा है। बीच बीच में थोड़ा स्मरण मनन भी करना। एक साथ अधिक समय न कर पाने पर बीच-बीच में करने से भी कुछ spot holes तैयार होते हैं। तब उनके द्वारा ही एक लाईन खींची जा सकती है। इस प्रकार एक continuity करने से हो जाएगा।"

और एक दिन एक अन्य व्यक्ति से उन्होंने कहा, "घबड़ाने की कोई बात नहीं। चेष्टा करने से सब का ही हो सकता है। माँ ठाकुरानी हम लोगों को कभी निरुत्साहित नहीं करती थीं। सब समय ही उत्साहित करतीं एवं उत्साह देते देते ठीक पथ पर ले जातीं। हमलोग भी इसीलिए कभी किसी को निरुत्साहित करने वाली बात नहीं बोलते—बोलना उचित भी नहीं है।"

एक दिन काम काज के सम्बन्ध में उनसे प्रश्न करने पर उन्होंने कहा, "सब काम ही ठाकुर की

सेवा है। ठाकुर का काम समझकर करते रहना ही उचित है। जो मन्दिर में पूजा कर रहा है, वह भी ठाकुर की सेवा कर रहा है, और जो आङ्गन में झाड़ू दे रहा है, वह भी ठाकुर की सेवा कर रहा है। हमारे भक्ति भाजन राजा महाराज को हमने ठाकुर की सेवा समझकर निर्विकार चित्त से बाहर आंगन में झाड़ू देते हुए देखा है। इसलिए सब कार्य ठाकुर का कार्य मानकर करते रहो।

एक पुरानी घटना याद आती है। प्रेसिडेन्ट होने के ठीक पहले ही वे अपने गुरुभाई, एक प्राचीन संन्यासी स्वामी प्रेमेशानन्दजी को देखने गये थे। प्रेमेशानन्द जी ने तब उनसे कहा था, "इतने दिन बाद ठाकुर आपको ठीक जगह ले आये हैं, आपको योग्य आसन पर बिठाये हैं ... अपने प्रेसिडेन्ट को तो मैं ठाकुर की प्रतिमा ही मानता हूं। दुर्गा की प्रतिमा विसर्जित की जाती है और एक नयी प्रतिमा उसकी जगह बिठाकर पूजा की जाती है। उसी प्रकार हमारे भी एक-एक संघ गुरु चले जाते हैं। उनके शून्य स्थान पर पुनः हम नयी प्रतिमा बिठाते हैं। यह प्रतिमा ठाकुर की ही प्रतिमा है।" माधवानन्द महाराज यह बात सुनते ही हाथ जोड़कर बोले, "यदि प्रतिमा ही कहते हैं तो आप प्रतिमा में प्राण-प्रतिष्ठा भी कर दीजिए। आप तो मां की प्रिय सन्तान हैं, सब कुछ कर सकते हैं।" इन लोगों का भाव कितना अद्‌भुत है। ये लोग एक दूसरे को किस दृष्टि से देखते हैं!

इसी प्रसंग में और एक घटना याद आती है। पूजनीय प्रेमेशानन्दजी की अन्तिम रोगाक्रान्त अवस्था में जब उन्हें कलकत्ता मेडिकल कालिज में लाया गया तो माधवानन्दजी उन्हें देखने के लिए वहां आये। दोनों प्राचीन मातृ-सन्तान की अत्यन्त निविड़ एवं एकान्त बातचीत हुई। अन्तिम विदा के समय दोनों ने हाथ पकड़ कर एक दूसरे को प्रणाम् किया। यह दृश्य अतुलनीय था। गभीरात्मा स्वामी माधवानन्द जी का यह एक अन्य चित्र है। एक बार एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा, "भगवान् को अपना बना लो—मानो अपने और पाँच स्वजनों की तरह! निष्कपटता रहने से इसी जन्म में उनका दर्शन मिलेगा।"

मठ के कार्यवाहकों ने किसी एक ब्रह्मचारी को मठ में दुर्गापूजा के लिए पुजारी का भार संभालने का आदेश दिया किन्तु उसने इससे पहले कभी दुर्गा-पूजा नहीं की थी इसलिए संकुचित मन से मठ के मैनेजर महाराज को अपनी दुर्बलता की बात कहने गया। उन्होंने कहा, "पूजनीय निर्मल महाराज ने तुम्हारा नाम सुनकर तुम्हें ही पूजा करने का आदेश दिया है। तुम भय न करो।" तब भी पुजारी के मन में साहस न देखकर वे बोले, "तो तुम सेवा-प्रतिष्ठान जाकर उनके साथ ही सब बात स्पष्ट रूप से कहो।"

पूजनीय माधवानन्द जी तब सेवाप्रतिष्ठान में अस्वस्थ अवस्था में थे। ब्रह्मचारी ने जब आश्रम के अध्यक्ष महाराज को सब बातें बतायीं तो वे स्वयं उसे लेकर महाराज जी के पास सेवा प्रतिष्ठान पहुँचे। ब्रह्मचारी की असुविधा सुनकर पूज्य महाराज जी कुछ गम्भीर होकर बोले, अनभिज्ञता का भय न करो। हमलोगों की इच्छा है कि पूजा तुम ही करो। पूजा का श्रीगणेश मठ से ही हो। पूज्यपाद महापुरुष महाराज कहते थे, यहां 'मां' (दुर्गा) का स्थायी आसन है। चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि मठ के सब साधुओं की शुभेच्छा तुम्हारे साथ रहेगी। मन प्राण से मां की पूजा करो। संघगुरु का अमोघ आशीर्वाद ग्रहण कर ब्रह्मचारी परितृप्त मन से लौट आया। मठ में पूजा इस वर्ष निर्विघ्न समाप्त हुई।

दूसरे वर्ष भी दुर्गापूजा का भार उसी ब्रह्मचारी पर पड़ा। किन्तु इस वर्ष सभी चिन्तित

थे, पूजनीय माधवानन्द जी महाराज गुरुतर अस्वस्थ अवस्था में शैय्याशायी थे। पूजा के दिनों में विघ्न होने की आशंका से सभी भयभीत थे। इसीलिए पुजारी ने कातर होकर माँ से पूजा निर्विघ्न होने के लिए प्रार्थना की थी। अस्पताल में ही पूज्य महाराज जी पूजा का विवरण अन्य साधुओं से सुनते रहे। विजया दशमी के दिन माँ का शान्तिजल ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की थी इसीलिए मठ में सब साधुओं को शान्तिजल वितरण करने के बाद पूजनीय मैनेजर महाराज, तन्त्रधारक स्वामीजी और पुजारी देवी पूजा का कलशादि गाड़ी में लेकर सेवा प्रतिष्ठान आकर महाराजजी की केबिन में उपस्थित हुए। कमरे के दरवाजे पर पहुँचने के साथ-साथ सेवकों ने कहा, "संध्या से ही महाराज शान्ति-जल के लिए उद्विग्न थे, अभी-अभी सोये हैं। किन्तु मठ के मैनेजर महाराज ने कहा, "नहीं! नहीं! देखो वे सोये नहीं हैं, भीतर चलो। आश्चर्य की बात भीतर घुसते ही उन्होंने आँखें खोलकर देखा। तन्त्रधारक महाराज और पुजारी ने वैदिक शान्तिमन्त्र पाठ करते हुए आम के पत्तों से कलश का थोड़ा सा जल लेकर उनके सिर पर छिटक दिया। महाराज जी ने आँखें बन्द कर लीं और उनके मुख पर प्रशान्ति फैल गयी। दोनों हाथ जोड़कर माँ दुर्गा को उन्होंने प्रणाम् किया। ठीक उसी समय पुजारी एक अन्य व्यक्ति के हाथ में कलश थमाकर पूज्य महाराजको प्रणाम करने के लिए उद्यत हुए ही थे कि महाराज जी का दायाँ हाथ आशीर्वाद की मुद्रा में थोड़ा ऊपर उठा। तुरन्त तन्त्रधारक महाराज ने पुजारी से कहा, 'ले! ले! महाराज के हाथ के नीचे अपना सिर रख दे।" पुजारी का सिर महाराज जी के हाथ के नीचे रखते ही उनका काँपता हुआ हाथ कुछ सेकेण्ड के लिए सिर पर स्थापित हो गया।

पुलकित देह से पुजारी ने समझा उसकी पूजा सार्थक हुई। साक्षात् जगदम्बा, जीवित-दुर्गा श्री श्री माँ सारदा देवी की प्यारी सन्तान जिसके सम्बन्ध में श्री श्री माँ ने कहा था, 'ये लोग मेरे सिर के मुकुट मणि हैं, जन्म जन्म में इस प्रकार के ही लड़के मिलें' उन्ही माधवानन्द जी के कृपा-स्पर्श लाभ के माध्यम से ही पुजारी ने जगज्जननी का आशीर्वाद प्राप्त किया। □

# स्मृति-सुमन तव चरणे

**स्वामी शशांकानन्द**
रामकृष्ण मठ, बेलुड़ मठ

२० अक्टूबर सन् १९६३ ई० के दिन, रामकृष्ण मिशन लखनऊ के नए प्राङ्गण (चांद गंज) के मुख्य प्रवेश द्वार पर पंक्ति बद्ध साधुगण रामकृष्ण मठ व मिशन के संघ गुरु (नवम अध्यक्ष) पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी माधवानन्द जी महाराज का अभिवादन करने के लिए शान्त किन्तु आतुर मन से प्रतीक्षा कर रहे थे। उसी भीड़ में एक नवागत ब्रह्मचारी के रूप में मैं भी अपने अति निकट आत्मीय, प्राणों के प्राण परम प्रेमास्पद गुरुदेव के चरण दर्शनों की आकांक्षा लिए, उनके आने की बाट जोह रहा था। इससे पूर्व उनके दर्शनों का सौभाग्य नहीं हुआ था इसीलिए कौतूहल-वश अत्यन्त चंचल हो उठा था। घड़ी-घड़ी दृष्टि रास्ते की ओर पड़ती। लगता, 'वे आ गये' 'वे आ गये'।

प्रतीक्षा की व्याकुल घड़ी शान्त हुई। पूज्यपाद महाराज जी की गाड़ी दरवाजे के सामने रुकी। वे बाहर आये। महाराज गण उन्हें उनके कमरे की ओर ले चले। भक्त और साधुओं ने मन ही मन उन्हें मानसिक प्रणाम किया। इस प्रकार उनके प्रथम दर्शन लाभ करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

पूज्यपाद महाराज जी की जन्मशताब्दी के अवसर पर उनके सम्बन्ध में कुछ लिखने की इच्छा हुई तो एक घटना स्मरण हो उठी। सन् १९६४ ई० की पहली अप्रैल, वृन्दावन रामकृष्ण सेवाश्रम में पूज्यपाद महाराज जी का शुभ पदार्पण हुआ था। किसी सेवक महाराजजी के न आने के कारण उनकी सेवा करने का दुर्लभ सुअवसर प्राप्त कर मैं धन्य हुआ था। रात्रि के भोजन करने के समय स्वामी प्र० ने पूज्य महाराज जी से कहा, "महाराज, मैंने मीरा के सम्बन्ध में एक पुस्तक पढ़ी है। लेखक ने उनके जीवन की अद्भुत झाँकी प्रस्तुत की है।" पूज्यपाद महाराज जी ने तत्क्षणात उत्तर दिया, "मीराके चरित्र का कोई भी वर्णन नहीं कर सकता, मीरा तो मीरा ही हैं।"

इस घटना को स्मरण करते हुए पूज्यपाद महाराज के सम्बन्ध में कुछ लिखते हुए बड़ा ही संकोच होता है और अपनी अयोग्यता का भान होता है। साधारण मनुष्य का जीवन उसकी शारीरिक एवं सांसारिक घटनाओं तक सीमित रहता है। किन्तु आध्यात्मिक अनुभूतिसम्पन्न महापुरुष तो शरीर, मन, इन्द्रिय और बुद्धि से परे आत्म-जगत् में विचरण करते हैं। ऐसे महापुरुषों को पहचानना एवं उनके भीतर के जीवन के सम्बन्ध में लिखना तो उन्हीं व्यक्ति के द्वारा सम्भव है जो स्वयं उसी दिव्य जगत् में उन्हीं की भांति विचरण करते हों। तब भी 'स्वान्तः सुखाय' आत्मशुद्धि के अभिप्राय से कुछ घटनाओं का उल्लेख करूंगा क्यों कि गुरु-स्मरण शिष्य के मन की मलिनता दूर कर पवित्र कर देता है।

जगज्जननी माँ सारदा देवी ने अपने प्रिय शिष्य स्वामी माधवानन्द जी को देखकर कहा था, "यह मानो सोने से मढ़ा हुआ हाथी का दाँत है।" .... "ये लोग ही मेरे सिर के मणि हैं। जन्म-जन्म में मुझे ऐसे ही पुत्र प्राप्त हों।" पूज्यपाद महाराज जी

के गुणों के बारे में जितना अनुध्यान करता हूँ उतना ही श्री श्री माँ के कथन की सत्यता अनुभव करता हूँ। वही अमूल्य धन गुरु रूप में मुझे प्राप्त हुआ है, प्राप्त हुई है धन राशि—उनकी पुण्य स्मृति, उनकी कृपा और स्नेह।

२२ अक्टूबर १९६३ ई० मेरे लिए स्वर्णिम दिवस था जब पूज्यपाद महाराज जी से मुझे दीक्षा प्राप्त हुई। वह घड़ी पवित्र एवं गुप्त ही रखना चाहता हूँ अतः उसका वर्णन नहीं करूँगा। केवल इतना ही कहूँगा कि उन्होंने मेरा भार ले लिया था क्योंकि दो दिन बाद ही जब मैं दीक्षा से पूर्व होने वाली साधना में उपस्थिति अपने विघ्नों के बारे में कह रहा था तो उन्होंने दृढ़ता से कहा, "जो बीतनी थी वह बीत चुका, दीक्षा के बाद अब वह विघ्न उपस्थित होना असम्भव है।" यही तो गुरु की कृपा है।

उन्हें 'गुरु' कहना, वे एक दम पसन्द नहीं करते थे। एक दिन एक सज्जनने एक युवक का पूज्यपाद महाराज जी का शिष्य कह कर परिचय दिया तो उन्होंने कहा, 'यदि कोई गुरु है तो श्री रामकृष्ण ही गुरु हैं, हम सब ही उनके शिष्य हैं।"

दीक्षा के समय भी पूज्यपाद महाराज जी शिष्य को श्री श्री ठाकुर और श्री श्री माँ की ओर इशारा कर दीक्षा की सामग्री उन्हीं के सामने अर्पण करने के लिए कहते और उन्हीं को प्रणाम् करने का निर्देश करते।

दीक्षा के दो दिन बाद मैंने पूज्य महाराज जी से गुरु-सेवा करने की अनुमति माँगी और मुझे अपने साथ बेलुड़ मठ ले जाने की प्रार्थना की। इसके उत्तर में उन्होंने कहा, 'मैं गुरु नहीं, गुरु केवल सच्चिदानन्द। भगवान् स्वयं वक्ता हैं, मैं तो केवल जड़ लाऊड स्पीकर। घटनावशतः मैं तो केवल यंत्र मात्र हूँ ··· ·· (कुछ क्षण पश्चात्)··· संघ में योगदान करना ही गुरु की सेवा है संघ का कार्य ही गुरु का कार्य है।"

यदि कोई उनसे उपदेश के लिए प्रार्थना करता तो वे कहते, 'उपदेश? वचनामृत पढ़ो, श्री श्री माँ के उपदेश पढ़ो, सब कुछ मिल जाएगा! ··· ···श्री श्री रामकृष्ण वचनामृत और विवेकानन्द साहित्य पढ़ो, आध्यात्मिक जीवन गठन करने के लिए जो कुछ चाहिए सब वहीं मिलेगा।"

कभी कभी वे कहते, "सब समय मुझ पर निर्भर न करना। अन्तर्निहित भगवान् की ओर देखो उन पर भरोसा रखो, प्रार्थना आन्तरिक भाव से होने पर वे अवश्य सुनेंगे।

मैंने जब उन्हें ध्यान और जप के सम्बन्ध में अपनी अनुभूति बतायी तो अतिरिक्त भावुकता का प्रकाश पाकर अचानक महाराज जी हाथ उठाकर उच्चस्वर से तीन बार बोल उठे, "Dont be emotional, dont be emotionai, dont be emotional (भावुक मत होओ, भावुक मत होओ, भावुक मत होओ)" कुछ क्षण चुप रहने के बाद उन्होंने बड़े ही प्यार से अमृतमयी वाणी कही, "भावुकता एवं विचार बुद्धि (Rationality) दोनों का संतुलित मिश्रण आवश्यक है। इष्ट एवं इष्ट मंत्र में विश्वास रखना। मन्त्र जप से ही सब मिलेगा। ध्यान करना अत्यन्त कठिन है किन्तु जप करते करते ध्यान स्वयं लग जाएगा, ईश्वर को देख सकोगे पर इन चक्षुओं से नहीं। उनके दर्शन के लिए आध्यात्मिक नयन पाओगे—ज्ञान चक्षु पाओगे। ईश्वर दर्शन हुआ है, ऐसा बोलना नहीं पड़ेगा। जिसने ईश्वर को देखा है, उसका मुख एवं दृष्टिभङ्गी ही बदल जाएगी।"

द्वितीय बार पूज्यपाद महाराज जी के दर्शन एवं सेवा करने का सौभाग्य मुझे रामकृष्ण मिशन, दिल्ली में हुआ था। २३ मार्च सन् १९६४ ई० को

महाराज जी का दिल्ली शुभागमन हुआ। इस बार बेलुड़ मठ से किसी सेवक महाराज के न आने के कारण गुरु सेवा द्वारा जीवन में अपूर्व तृप्ति लाभ कर सका था। दो सप्ताह की मधुर स्मृति का कुछ अंश यहाँ उल्लेखनीय है।

दिल्ली आश्रम के प्रवेश द्वार पर पहुँचते ही हम सामने ही भगवान् श्री रामकृष्ण देव का मंदिर एवं उसमें प्रतिष्ठित श्री रामकृष्ण देव की सुन्दर मूर्ति का दर्शन कर पाते हैं। बाईं ओर मिशन कार्यालय एवं साधु-निवास है। इसी की दूसरी मंजिल के एक कमरे में महाराज जी के ठहरने की व्यवस्था की गयी थी।

एक दिन महाराज जी इसी भवन से मंदिर जाने के लिए सीढ़ी से उतर आये। एक स्वामी जी ने महाराज जी को घास के ऊपर चलते हुए मंदिर जाने के लिए अनुरोध किया। पूज्य महाराज को यह पसंद न हुआ और वे बरामदे से होते हुए पक्के रास्ते से ही मन्दिर गये। घटना छोटी होते हुए भी बड़ी ही महत्त्वपूर्ण थी। श्री श्री माँ सारदा देवी ने उनसे कहा था, "भगवान ही सब बने हुए हैं" (अर्थात् घास में भी वे हैं)। श्री रामकृष्ण देव के जीवन में भी देखा जाता है कि एक सज्जन को घास के ऊपर चलते हुए देख उन्होंने अपनी छाती में पीड़ा का अनुभव किया था। घास में भी ईश्वर हैं, यह भाव लगता है उनके जीवन में गहरा उतर चुका था।

एक दिन दीक्षा चल रही थी। पूज्य महाराज जी एक समय एक दीक्षार्थी को दीक्षा दे रहे थे। दीक्षार्थी अपने हाथ में दीक्षा सामग्री का थाल लेकर कमरे में घुसता। उसके बाहर आने पर मैं अन्दर जाकर थाला ले आता और दूसरे दीक्षार्थी को जाने देता। तीन चार व्यक्तियों की दीक्षा हो जाने पर मैं थाला लाने के लिए भीतर घुसा तो महाराज जी को अपना कुर्ता उतारते हुए देखा। उन्होंने कुर्ता मेरे हाथ में थमा दिया। उस समय बंगला भाषा भली प्रकार न समझने के कारण समझ न पाया क्या करना है। हैंगर में कुर्ता लगाकर टाँग दिया। इसी बीच महाराज जी ने अपनी बनियान उतार कर खाट पर रख दी और मेरी ओर हाथ बढ़ाया। तब समझा कि वे कुर्ता माँग रहे हैं, मैंने जल्दी से कुर्ता उन्हें दे दिया। वे कुर्ता पहनने लगे। इस बीच में मैं थाला लेकर बाहर निकला और दूसरे दीक्षार्थी को भीतर जाने के लिए कहा। जैसे ही दीक्षार्थी ने प्रवेश किया मेरी दृष्टि पूज्यपाद महाराज जी की ओर पड़ी। कुर्ता पहन कर वे दोनों ओर की जेब खोज रहे थे। दीक्षार्थी को आते देख वे चुप हो गये और मैं भी बाहर निकल आया। अब मुझे अपनी भूल मालूम पड़ी। कुर्ता उतारते समय उलट गया था और मैंने वही उल्टा कुर्ता महाराज जी को थमा दिया था। लज्जित एवं भयभीत होकर मैं स्वा० प्र० के पास गया। मुझे भरोसा देते हुए उन्होंने कहा, "कोई भय नहीं, तुम जैसे काम कर रहे थे वैसे ही करते रहो। महाराज जी तो एक दम शिव जी की तरह हैं।" दोषी की तरह सन्त्रस्त हृदय से भीतर घुसा। देखा पूज्य महाराज जी अपना कुर्ता सीधा करके पहन चुके थे और पूर्ववत जप कर रहे थे। उन्होंने मुझे कुछ भी न कहा। सर्व भयों से मुक्त, निश्चित एवं प्रसन्न हृदय से पुनः मैं अपना कार्य करता रहा। क्यों न हो, जिन्होंने भव भय को ही उड़ा दिया उनके सामने छोटा मोटा भय कैसे रहे?

श्री श्री ठाकुर के प्रसाद के प्रति पूज्यपाद महाराज जी की अपूर्व श्रद्धा थी। एक दिन रात्रि में वे भोजन कर रहे थे। भोजन प्रायः समाप्त हो चला था तब मुझे याद आया कि आज तो ठाकुर का प्रसाद दिया नहीं। जल्दी से प्रसादी एक मिठाई (बंगाली सन्देश) लाकर उनसे पूछा,

"महाराज, ठाकुर का प्रसाद दूँ ?" महाराज जी ने तुरन्त उत्तर दिया, "दे दो" स्वामी प्र० ने सुनते ही मुझे डांटते हुए कहा, 'अरे यह क्या किया ? अधिक मिठाई खा लेने से उनका शरीर अस्वस्थ हो जाएगा।' वे शीघ्र ही घटनास्थल पर पहुँचे और नम्रता से उन्होंने पूछा, "महाराज, यह मिठाई हटा दूँ ?" अविलम्ब उत्तर आया, 'नहीं रहने दो, कोई क्षति न होगी।' और ऐसा ही हुआ।

पूज्यपाद महाराज जी नित्य जप-ध्यान के बाद रोज बीस मिनट श्री रामकृष्ण कथामृत (वचनामृत) पढ़ते थे, तदुपरान्त सुबह का नाश्ता करते।

५ अप्रल सन् १९६४ ई० की बात है। पूज्यपाद महाराज जी दिल्ली से कनखल सेवाश्रम जाएंगे। एक दिन पहले ही उन्होंने स्वामी प्र० से कहा कि वे दूसरे दिन पहले प्रणाम करने नहीं जाएँगे। इसीलिए उस दिन मैं उनका नाश्ता जल्दी ले आया। आज महाराज जी के साथ जाऊंगा, इसी आनन्द में जल्दी-जल्दी सीढ़ी से उठ रहा था। आधी सीढ़ी चढ़ने पर थमक कर खड़ा रह गया। महाराज जी बरामदे में खड़े मन्दिर की ओर हाथ जोड़े ठाकुर को प्रणाम कर रहे थे। अपूर्व दृश्य था। फिर वे अपने कमरे की ओर लौटे किन्तु दरवाजे के पास आते ही पुनः बरामदे की रेलिंग के पास जाकर बरामदे के खम्बे पर सिर रखकर ठाकुर को प्रणाम् किया। कुछ क्षण पश्चात् वे अपने कमरे की ओर बढ़े किन्तु पुनः बरामदे की रेलिंग की ओर लौट कर उन्होंने भूमि पर सिर रखकर ठाकुर को प्रणाम किया और अपने कमरे में लौट गये। क्या श्री श्री ठाकुर को मन्दिर न जाकर यहीं से प्रणाम् करने के कारण महाराज जी का मन अतृप्त है, यह प्रश्न मन में लिए मैं भी अपने कमरे में चला गया। अभी २० मिनिट महाराज जी, कथामृत पढ़ेंगे, इसीलिए स्वामी प्र० और मैं नाश्ता करने बैठ गये। किन्तु तभी पूज्य महाराज जी का कण्ठस्वर सुना। वे मुझे बुला रहे थे। जैसे ही मैं बरामदे में गया उन्हें हाथ में बेंत लिए सीढ़ी की ओर बढ़ते देखा। वे बोले, "धीरेन से कहो मैं मन्दिर जाऊँगा।" और वे सीढ़ी से नीचे उतरने लगे। स्वामी प्र० भी शीघ्र ही हाथ धोकर उनके पीछे-पीछे चल पड़े।

इस घटना के माध्यम से पूज्यपाद महाराज जी की मन्दिर में जाने की निष्ठा ने हमें अवाक् कर दिया। मन्दिर में श्री श्री ठाकुर स्वयं विराजमान हैं। इस घटना से उनका यह अटूट विश्वास ही प्रकट होता है। भला घर के मालिक से साक्षात् किये बिना बाहर कैसे जाएँ ?

अपने लिए किसी दूसरे व्यक्ति को कष्ट या असुविधा वह कभी नहीं होने देते थे।

पूज्यपाद महाराज जी के दाढ़ी बनाने में सुविधा करने के लिए उनके गुसलखाने में एक शीशा दीवार में ठीक स्थान पर लगाने के लिए मिस्त्री को बुलाया गया था। जब महाराज जी मन्दिर जाएँगे उस समय यह कार्य सम्पन्न करने का आदेश मिस्त्री को दिया गया था। किन्तु मिस्त्री २० मिनट पहले ही आ पहुँचा। पूज्य महाराज जी कथामृत पढ़ रहे थे। इतने में स्वामी एस० ने मिस्त्री को समय से पहले आने के लिए फटकारा और नीचे जाकर प्रतीक्षा करने के लिए कहा। पूज्यपाद महाराज जी के कानों तक यह आवाज जा रही थी। कथामृत पाठ अभी छः मिनट ही हुआ था, चौदह मिनट बाकी थे। महाराज जी ने तुरन्त स्वामी सं० को बुलाकर कहा, "मिस्त्री मेरे लिए प्रतीक्षा क्यों करेगा ? मैं अभी मन्दिर जाऊँगा, वह कार्य कर ले।" इतना कहकर महाराज जी मन्दिर चले गये और वहाँ से लौट कर बाकी १४ मिनट कथामृत पाठ किया ताकि मिस्त्री शीशा लगाकर चला जाए और उनके लिए प्रतीक्षा कर अपना समय न नष्ट करे।

महाराज जी के मन्दिर प्रणाम करके लौटने

से पहले ही मैं उनका घर साफ कर लेता था। एक दिन उनकी मेज पर रखे श्री श्री ठाकुर और माँ के चित्र को स्पर्श करने के लोभ को न संभाल सकने के कारण मुझे एक मिनट विलम्ब हुआ। जब मैं बाल्टी और कपड़ा लेकर निकला तो पूज्यपाद महाराज जी ने देख लिया था और इसी लिए वे जूते बाहर उतार कर ही कमरे में घुसे थे। इस बीच बहुत से प्रवीण संन्यासीगण भी महाराज जी के पास गये और बातचीत करने लगे। कुछ समय के बाद पूज्य महाराज जी ने गुसलखाने में जाने हेतु जूता पहनने के लिए बाहर रखे जूतों को देखा। मैं भी बाहर से जूता लेकर महाराज जी के पास ले जाने के लिए दौड़ा, अन्यान्य महाराजगण भी उसी प्रकार उनके जूतों की ओर दौड़े किन्तु हम सभी को पराजित कर तीव्र गति से बाहर आकर वे जूते पहन रहे थे। स्वनिर्भरता की मूर्ति ही थे वे।

प्रथम प्रथम मैं एक मोड़ा लेकर बरामदे में ही बैठता था जिससे महाराज जी मुझे आवश्यकता पड़ने पर बुला सकें। मैं इस प्रकार बैठा था कि मैं उन्हें देख सकूँ पर वे न देख सकें। पूज्यपाद महाराज जी आराम कुर्सी पर बैठे कुछ पढ़ रहे थे। दोनों चरणों को एक मोड़े पर रखने के लिए वे मोड़ा अपनी ओर खींचने के लिए उठे। यद्यपि मैं साथ ही साथ मोड़ा देने के लिए उनके कमरे में घुसा किन्तु उससे पहले ही मोड़ा खींच कर उन्होंने अपने चरण द्वय उस पर टिका दिये। मुझे देखकर उन्हें यह समझते देरी न लगी कि मैं बरामदे में ही कहीं से बैठा हुआ उनके आदेश की प्रतीक्षा करता हूँ। वे बोले, "मेरे लिए अपना समय नष्ट करने की आवश्यकता नहीं। जाओ अपने कमरे में जाकर कुछ पढ़ो।"

तीर्थ स्थानों के प्रति उनकी भक्ति अपूर्व थी और प्रत्येक स्थान के साथ श्री श्री ठाकुर की लीला स्मृति उन्होंने जोड़ रखी थी।

३१ मार्च सन् १९६४ ई० का दिन। पूज्यपाद महाराज जी दिल्ली से श्री वृन्दावन धाम के लिए रवाना हुए। गाड़ी में पीछे की सीट पर महाराज जी एवं स्वामी अभयानन्द जी बैठे हुए थे। सामने की सीट पर मैं और स्वामी प्र० जी।

स्वामी प्र०: "महाराज! क्या आप कोई मन्दिर भी देखेंगे"

महाराज: "हाँ! एक मन्दिर"

स्वामी अभयानन्द जी: कौनसा? राधा वल्लभ?

महाराज: "नहीं! बाँके बिहारी।"

सब स्थानों में बाँके बिहारी के प्रति इतना आकर्षण क्यों न हो? बाँके बिहारी का दर्शन कर श्री रामकृष्ण देव को अद्भुत भावावेश हुआ था— आत्म विस्मृत हो वे उन्हें आलिङ्गन करने दौड़े थे।

जब महाराज जी बाँके बिहारी जी का दर्शन कर रहे थे मैं उनके मुखारविन्द पर बिखरी दिव्य छटा का रस पान कर रहा था। मानो माधवानन्द 'माधव' का आनन्द ले रहे थे।

दूसरे दिन स्वामी प्र० तीर्थ स्थान दर्शन करके लौटे तो पूज्य महाराज जी ने उनसे पूछा, 'तुमने क्या कालिया दमन घाट देखा?" स्वामी प्र० बोले, 'नहीं महाराज।" तुरन्त महाराज जी बोले, 'तब तो तुमने कुछ भी नहीं देखा।" सम्भवतः पूज्यपाद महाराज जी का संकेत यह था कि श्री कृष्ण की दिव्य लीला से रंजित उस तीर्थ स्थान की महिमा तब से सर्वोच्च हो उठी है जब से युगावतार भगवान् श्री रामकृष्ण ने उसी स्थान पर पुनः दिव्य लीला की थी। श्री श्रीरामकृष्ण वचनामृत में स्वयं श्री रामकृष्ण देव ने कालिया दमन घाट देखने पर जो दिव्य भाव उन्हें हुआ था, उसका वर्णन किया है।

१५ दिन का आनन्द उत्सव समाप्त हुआ। ६ अप्रैल को पूज्यपाद महाराज जी बेलुड़ मठ लौट आये। रह गया बस मैं और मेरे साथ उनकी पवित्र मधुर स्मृति।

स्मृति पवित्र होने पर भी सब समय मधुर नहीं होती। कभी-कभी बड़ी दुःखदायी भी होती है। ३ अक्टूबर सन् १९५५ ई०। अत्यन्त अस्वस्थ अवस्था में पूज्यपाद महाराज जी रामकृष्ण मिशन सेवाप्रतिष्ठान कलकत्ता में शय्याशायी। संवाद पाते ही आज यहाँ आ पहुँचा। जीवन-मरण से दिन रात जूझते हुए भी उन्हें शिशु की भाँति ईश्वर के ऊपर एकान्त निर्भरशील होकर शान्त देखा गया। सब समय अन्तर्मुखी भाव।

अन्तिम तीन दिन उनकी सेवा की तीव्र इच्छा थी। प्रभु ने वह भी पूर्ण की। उनके पास घण्टों बैठने का सुअवसर मिला था।

बीच बीच में उन्हें कहते हुए सुना, "इतना कष्ट, मानो मृत्यु हो।" किन्तु तुरन्त ही वे उच्च-स्वर से कहते, "नारायण!" "दुर्गा!" और फिर अन्तर्मुखी हो जाते, शान्त हो जाते। कभी-कभी अत्यन्त व्यथा होने पर अत्यन्त पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए महाराज जी समाचार पत्र लाकर उसकी बड़ी बड़ी Headlines पढ़ने के लिए कहते। दो चार Headline सुनते न सुनते अन्यमनस्क होकर वे उच्चस्वर से कहने लगते, "माँ।" "दुर्गा।" "नारायण" सम्भवतः देह से मन हटाकर ईश्वर में लगाने की यही उनकी पद्धति थी! तब ही तो चर्म रोग से आक्रान्त जिस अवस्था में साधारण मनुष्य दुःख एवं निराशा से पागल सा हो उठता है, पूज्यपाद महाराज जी ने बृहदारण्यकोपनिषद जैसे गंभीर दार्शनिक तत्त्वों से पूर्ण ग्रन्थ का अंगरेजी अनुवाद किया था।

एक दिन पूज्यपाद महाराज जी गेरुआ चादर ओढ़े लेटे थे। कमरे में मैं अकेला ही उनका श्रीमुख दर्शन करते हुए उनकी खाट के पास ही खड़ा था। स्नेहरंजित हास्य से भरी मधुर कृपा दृष्टि से उन्होंने मेरी ओर देखा और आहिस्ता से अपना दाँया हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया। मैं भी उनका हाथ अपने हाथ में लेकर सहलाने लगा। यह क्षण मेरे जीवन में चिर—स्मरणीय रहेगा। उसी क्षण— महाराज कमरे में घुसते ही मुझे धमकाने लगे, "नहीं जानते उनका हाथ बहुत नाजुक हो गया है। जाओ निकलो यहाँ से ....'' इत्यादि। सारा आनन्द भङ्ग हो गया। पूज्यपाद महाराज जी भय से शिशु की भाँति अपना हाथ आहिस्ता आहिस्ता हटाने लगे। मैंने भी उनका हाथ उनके बिछौने पर रख दिया। पूज्यपाद महाराज जी अभी भी बड़े स्नेह से मेरी ओर देख रहे थे। वही सुन्दर छवि एवं कृपा दृष्टि मैंने अभी भी अपने में संजो कर रखी है।

६ अप्रैल १९६५ ई०। इस महाजीवन का अन्तिम दिवस। महाराज जी लेटे हुए थे। उनके बाईं ओर एक कुर्सी पर बैठा हुआ मैं उनके सिर पर हवा कर रहा था। अचानक वे कह उठे "यह ज्योति जला दो (एई आलोटा जालिए दाओ)" सभी कमरे की बत्ती जलाने के लिए स्विच की ओर बढ़े परन्तु सभी बत्तियाँ जली हुईं थीं, सब ही चुप रह गये। किन्तु मैंने देखा था कि सामने दीवाल पर टंगे हुए श्री श्री ठाकुर, माँ और स्वामी जी की ओर अंगुली से इशारा करते हुए ही उन्होंने कहा था, "यह ज्योति जला दो।" शायद मेरे लिए ही यह उनका अन्तिम आदेश था जिसका अर्थ मुझे लगा, "अपने अंधकारमय हृदय में श्री श्री ठाकुर माँ और स्वामी जी को विराजमान करो, सब अन्धकार दूर हो जाएगा।" □

# स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक— स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

यह सुनकर उन्हीं भक्त ने पुनः पूछा—"महाराज ! माधुकरी और भिक्षा क्या दोनों एक ही चीज है ?"

लाटू महाराज—माधुकरी क्या है जानते हो ? मधु-मक्खी जैसे विविध फूलों पर बैठकर थोड़ा माधुकरी लेकर अपना पेट भरती है, ठीक वैसे ही साधु घर-घर जा कर एक-एक मुट्ठी अन्न संग्रह करके शरीरधारण करते हैं। लोग तरह-तरह की कामना के साथ साधु को भिक्षा देते हैं, जानते हो न ? जो जितना देता है उसके साथ उतनी ही कामना मिश्रित रहती है। इसीलिए साधु किसी से एक मुट्ठी से अधिक नहीं लेता। एक मुट्ठी देगा तो भला उसके साथ कितनी कामना करेगा ! उतनी कामना से साधन-भजन को क्षति नहीं पहुँचती। परन्तु अधिक लेने से कामना की मात्रा भी अधिक रहती है और उससे साधक की क्षति हो सकती है। इसीलिए माधुकरी का अन्न बड़ा शुद्ध होता है और साधना के लिए अनुकूल है।

उसी भक्त ने फिर पूछा था—'महाराज ! ठाकुर जब आप आप लोगों को माधुकरी के लिए भेजते थे, तब आप लोगों का मन क्या साधन-भजन से नीचे नहीं उतर जाता था ?

लाटू महाराज—अरे ! माधुकरी भी तो साधन का एक अंग है। वह क्या साधना से अलग है ? भिक्षा के समय कितने ही लोग कितनी तरह की छोटी-बड़ी बातें कहते हैं। उस पर जो साधु अपना मन और मिजाज ठीक रख सकता है, अपने भीतर का राग द्वेष और क्रोध व्यक्त नहीं होने देता, वह काफी आगे बढ़ चुका है। भिक्षा माँगना एक प्रकार की शिक्षा समझना। जब तक मान-अभिमान रहता है, तब तक कोई भिक्षा नहीं कर सकता। इसीलिए तो शास्त्रों ने संन्यासी की देहरक्षा के लिए मुष्टिभिक्षा का विधान किया है। साधु के लिए भिक्षा एक प्रकार की तपस्या है। जो साधु नारायण की दया मानकर भिक्षा ग्रहण करता है और जो दाता नारायण ज्ञान से भिक्षा देता है, उन दोनों का कल्याण होता है। साधु भगवान के ऊपर निर्भर करना सीखता है। वही निर्भरता लाने के लिए तो ठाकुर हम लोगों को भिक्षा करने भेजते थे।

भक्त—महाराज ! भगवान के ऊपर निर्भरता लाने के लिए और भी तो पथ हैं ?

लाटू महाराज—हाँ ! हैं, परन्तु भिक्षा से निर्भरता और भी बढ़ जाती है। जानते हो क्यों ? अपने प्रयास से तो किसी को भिक्षा मिलती नहीं, दाता की दया होने पर ही उसे भिक्षा मिलती है। दाता की दया क्या अपने आप होती ? वे (भगवान) जब सन्तुष्ट होते हैं तभी दाता को दान करने की इच्छा होती है। यहाँ तक कि दाता यदि निर्धन हो तो भी वहाँ से कुछ न कुछ दान मिल ही जाता है। और वे यदि संतुष्ट न हुए तो धनी के घर भी भिक्षा नहीं प्राप्त होती।

भिक्षा के बारे में मैंने और भी एक घटना सुनी है। एक दिन लाटू को ब्रह्मचारी वेष में भिक्षा करते देखकर कुछ युवकों ने उन पर कटाक्ष करते हुए कहा था—"यह

देखो ! परमहंस की फौज चली जा रही है। ये लोग बाद में संन्यासी होकर हम लोगों के सीने पर मूंग दलेंगे। यहाँ क्यों भैया ! जपतप करना है तो हिमालय में जाओ न ! कलकत्ते में घूमने से क्या जपतप होता है ?" ये बातें ठाकुर को कहने पर उस दिन उन्होंने भक्तों को हिमालय का माहात्म्य बताया था और इसके साथ ही कुछ और भी तीर्थों का नाम लिया था जहाँ बैठकर जपध्यान करने से सहज ही सिद्धि मिल जाती है। स्थान-माहात्म्य की बात सुनकर लाटू के मन में तीर्थभ्रमण की इच्छा जागने लगी।

बहुत दिनों तक लाटू यह इच्छा अपने मन में ही पोषण करता रहा। कभी किसी को इस विषय में उसने बताया नहीं। तो भी अन्तर्यामी ठाकुर वह बात जान गये। "एक दिन जब मैं उनके पाँव दबा रहा था, उन्होंने मेरे मन की बात पकड़ ली। वे बोले—'अरे ! यहाँ (दक्षिणेश्वर) का प्रसादी अन्न छोड़कर कहाँ जाएगा ? मन को चंचल न होने देना, बाहर जाने पर खाने का कितना कष्ट होता है जानता है न ? कहाँ जा कर भटकेगा ? यदि कहीं जाना ही है तो जा न कलकत्ता राम के घर हो आ।' उनकी बात सुनकर मैं कलकत्ता गया जरूर, पर कलकत्ता मुझे अच्छा नहीं लगा। उनके पास जैसा स्वाधीन भाव से रहता था वैसा कलकत्ते में नहीं रह पाता था। इसीलिए दो-चार दिन बाद ही मैं फिर वहीं लौट आया।"

कुछ दिन बाद पुनः लाटू के मन में तीर्थगमन की कामना बलवती हुई। अतः एक दिन ठाकुर हँसते हुए बोले "अरे ! यहाँ बहुत दिन हो गये, एक बार घूम आ न !" इस प्रकार अयाचित अनुमति पाकर लाटू ने अपने आप को बड़ा धन्य माना था। परन्तु कहाँ जाऊँ, वह यह स्वयं निश्चित नहीं कर सका। आखिर कार वह ठाकुर से बोला—"आप मुझे कहाँ जाने को कहते हैं ?

ठाकुर—कुछ दिनों के लिए बाबूराम के गाँव (आँटपुर) चला जा न ! वहाँ बाबूराम है. अतः तुझे किसी भी चीज की चिन्ता नहीं करनी होगी। क्रमशः

---

बैद्यनाथ च्यवनप्राश
अब पोलीजार मे
उपलब्ध
यौवन
विकास
कफ खांसी नाशक
दिमागी ताजगी
बलवर्द्धक
बैद्यनाथ
च्यवनप्राश
अवलेह स्पेशल
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
पटना-८००००१
आदर्श आयुर्वेदिक
पारिवारिक टानिक
कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?
प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०६ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।
बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१
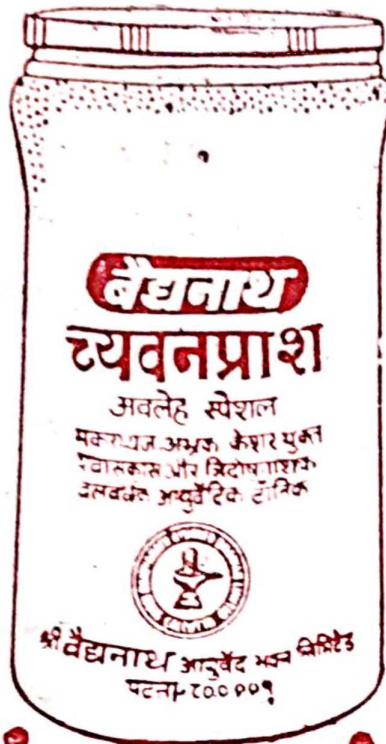
डाक पंजीयित संख्या—पी० एन० पी०—१४-८१ अंक—११—१९८८

# कुछ अवश्य संग्राह्य जीवनी-ग्रन्थ

| | | |
|---|---|---|
| श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग (तीन भागों में) | — स्वामी सारदानन्द | प्रथम भाग—रु २०.०० |
| | | द्वितीय भाग—रु २०.०० |
| | | तृतीय भाग रु १७.०० |
| श्रीरामकृष्ण : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश | —स्वामी अपूर्वानन्द | —रु. ३.०० |
| माँ सारदा | —स्वामी अपूर्वानन्द | —रु. १७.०० |
| श्री सारदादेवी : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश | —स्वामी अपूर्वानन्द | —रु. ३.०० |
| विवेकानन्द-चरित | —सत्येन्द्रनाथ मजूमदार | - रु २०.०० |
| स्वामी विवेकानन्द : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश | —स्वामी अपूर्वानन्द | —रु ३.०० |
| श्रीरामकृष्ण भक्तमालिका | —स्वामी गम्भीरानन्द | प्रथम भाग—रु. १८.०० |
| स्वामी शिवानन्द | —स्वामी शिवतत्वानन्द | — रु. ६.०० |
| स्वामी विज्ञानानन्द | — स्वामी विश्वाश्रयानन्द | . ३.०० |
| साधु नागमहाशय | —शरच्चन्द्र चक्रवर्ती | —रु. ६.५० |
| आचार्य शंकर | —स्वामी अपूर्वानन्द | —रु. ६.५० |

अधिक जानकारी के लिए लिखें—

**रामकृष्ण मठ,**
**(प्रकाशन विभाग)**
धन्तोली, नागपुर – 440 012

मूल्य : २.५०

के सौजन्य से श्री हिमालय प्रेस में कवर मुद्रित

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना—४ में मुद्रित।